H—82

बिन बुलाए मेहमान

प्रकाश पंडित



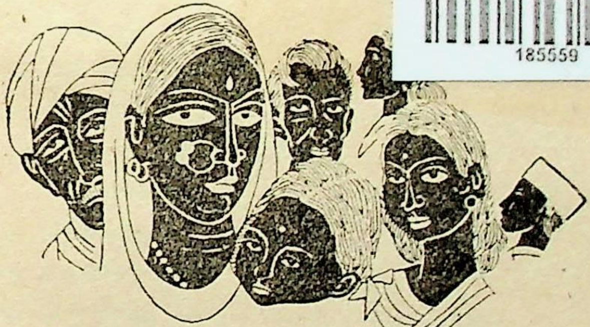


हमारी इस बात से आप ज़रूर सहमत होंगे कि उर्दूवाले बड़े दिलवाले हैं और दिल खोलकर ज़ोर का ठहाका मारकर हंस सकते हैं, और दहाड़ें मारकर रो भी सकते हैं! घुटन उन्हें क़तई पसन्द नहीं है। वे व्यंग्य कसते हैं और व्यंग्य का निशाना बनने से भी नहीं घबराते। बस, यही वजह है कि वे अपनी क़लम की नोक से दिल को छू लेते हैं, उसे गुदगुदाते हैं, हंसाते हैं और कभी-कभी नोक को ज़रा चुभो भी देते हैं। ऐसे ही लोगों की क़लम से 'बिन बुलाए मेहमान' की रचना हुई है। उनके नाम विषयसूची में देखिए और काम आगे के पृष्ठों में।

किन कुमार

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

मेहमान



कृश्न चन्दर • मंटो
कन्हैयालाल कपूर • शौकत थानवी
हाजी लक़लक़ • फिक्रतौंसवी आदि

१२ श्रेष्ठ व्यंग्यकारों की लोकप्रिय रचनाएं

हास्य और व्यंग्य से भरपूर

मूल्य : एक रुपया

प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

BIN BULAYE MEHMAN : HUMOUR AND SATIRE :
PRAKASH PANDIT



रशीद अहमद सिद्दीक़ी

आपका जन्म १८९९ ई० में जौनपुर (उ० प्र०) के क़स्बा मर्याहू में हुआ। फ़ारसी-अरबी की प्रारम्भिक शिक्षा घर में प्राप्त की और फिर जौनपुर के स्कूल में प्रविष्ट हुए और बोर्डिंग में रहने लगे। यहीं से उनके जीवन पर बोर्डिंग हाउस का जो ठप्पा लगा उसे अलीगढ़ के होस्टल-जीवन ने और भी उजागर कर दिया। हाईस्कूल पास करके कचहरी में उन्होंने नक़लनवीसी कर ली थी। उनके लेखों में पटवारी, गवाह, अदालत, थानेदार और सिरफिरे अंग्रेज अफ़सरों के चरित्र-चित्रण उन्हीं दिनों की यादगारें हैं। आप १९१५ ई० में अलीगढ़ आए और यूनिवर्सिटी में, जो उस समय तक ए० ओ० कालेज थी, दाखिला ले लिया। कालेज से उन्हें असीम प्रेम है। कई वर्ष तक कालेज मैगज़ीन के सम्पादक, टैनिस के सेक्रेट्री और यूनियन के सेक्रेट्री भी रहे। १९२१ ई० में उर्दू-विभाग से सम्बन्धित हो गए। १९३४ ई० में जब एम० ए० की शिक्षा शुरू हो गई तो आप पहले रीडर और फिर प्रोफ़ेसर की हैसियत से विभाग के अध्यक्ष नियत हुए और १९५८ ई० में रिटायर होने तक यह पद उनके अधीन रहा।

उर्दू हास्य-व्यंग्य के इन शहसवार की मुख्य रचनाएं (पुस्तकें) ये हैं :

'मज़ामीन-ए-रशीद', 'ख़ंदां', 'शेख़ न्याज़ी', 'गंजहाए-गिरांमाया', 'हमनफ़ंसान-ए-रफ़्ता, और 'ज़ाकिर साहब' और 'तन्ज़ियात-ओ-मज़ह-कात'।

सुबह होती है शाम होती है ![1]

सुबह होती है शाम होती है। लेकिन मेरी उम्र तमाम नहीं होती। आज तक याद नहीं, घर-भर में मुझसे पहले कोई उठा हो और रात में मेरे बाद सोया हो। हां, दो कौए ज़रूर ऐसे हैं जो मेरे आंगन में उन दो पेड़ों पर अलग-अलग आकर बैठते हैं; जो एक-दूसरे और मेरी चारपाई से पन्द्रह फुट के फ़ासले पर खड़े हैं और तारों की छांव में बारी-बारी मुझपर लानत भेजना शुरू करते हैं। भगवान जाने ये कौए कौन हैं, कहां के हैं और क्यों हैं!

निःसंदेह ये पति-पत्नी नहीं हैं। पति-पत्नी में इतना सहयोग कहां कि वर्षों नियमपूर्वक एकसाथ सुबह के समय आएं और मुझपर लानत भेजकर चले जाएं। दोनों स्त्रियां भी नहीं हैं, क्योंकि दो स्त्रियां एक ही व्यक्ति पर अधिक दिन तक लानत नहीं भेज सकतीं। एक दिन उनमें से एक उस व्यक्ति से शादी कर लेगी और गले की लानती ज़ंजीर बन जाएगी। दोनों पुरुष भी नहीं हो सकते; क्योंकि पुरुषों को अपनी लानतों से ही कहां छुटकारा है कि वे मुझपर लानत भेजने के मनोरंजन में पड़ें।

शोर करके उनको उड़ा नहीं सकता, इसलिए कि ये कौए तो मेरे शोर से उड़ जाएंगे, लेकिन दूसरे कौए जो इनसे अधिक कौए हैं, उठ बैठेंगे। आंगन में ज़रा दूरी पर जहां नौकरों का कुटुम्ब सोता है, वहां भी एक से एक अच्छे पेड़ हैं। उनके आसपास हर प्रकार के पौष्टिक भोजन भी फैले हुए हैं, लेकिन ये वहां नहीं जाएंगे। मैं इनको छोड़कर अपना कमरा खोलूंगा। दरवाज़े पर पांच-सात मेढक और हज़ारों-लाखों मच्छर

---

१. "सुबह होती है शाम होती है।
उम्र यूंही तमाम होती है॥"

होंगे और मेरे साथ कमरे में प्रवेश कर जाएंगे। अब मेरा काम यह है कि इन मेढकों को चारपाई और तख़्त के नीचे घुसकर निकालूं और मच्छरों पर दवाई छिड़क दूं। मेढक तो न जाने कहां ग़ायब हो जाते हैं, लेकिन मच्छरों की हालत यह है कि जब से डाक्टरों ने इनपर कुछ नये आरोप लगाए हैं, इन्होंने डी० डी० टी० से मरना छोड़ दिया है।

कमरे में प्रकाश करके पढ़ना-लिखना शुरू करता हूं, जहां 'इन्स्प्रेशन' मच्छरों से मिलता है और 'ओवेशन' मेढकों से, और ये कमबख़्त इतने क़रीब से प्रशंसा करते हैं कि चौंक-चौंक पड़ता हूं कि मैं उनपर या वे मुझपर तो नहीं बैठे हैं!

मैंने अपने मकान का मर्दाना भाग कुछ दिनों से बन्द कर रखा है। खुला रहता था तो चोर चारपाई उठा ले जाते थे। पशु बाग़ीचा चर जाते थे और रास्ते से गुज़रनेवाले नमाज़ पढ़ने आ जाते थे। वह इस तरह कि भीतर से लोटा, पानी, तौलिया, जाए-नमाज़[1] मंगाई और उन सबके साथ नमाज़ बा-जमाअत[2] अपने घर जाकर पढ़ी।

ज़नानख़ाने[3] का दरवाज़ा मेरे कमरे के छज्जे से काफ़ी दूरी पर है। सुबह से रात गए तक खट्-खट् होती रहती है और मैं जा-जाकर देखता रहता हूं कि क्या दुर्घटना है। दुर्घटनाएं देखिए…"अमुक का देहांत हो गया है, आप यहां क्या कर रहे हैं! अमुक का डिनर है, आप निमन्त्रित हैं। अमुक पत्र निकल रहा है, एक लेख लिखिए और पांच ख़रीदार बनाइए। अमुक मस्जिद बन रही है, नमाज़ पढ़नी होगी। अमुक की बीवी भाग गई है, ज़रा चौकन्ने रहिए। एक बच्चा खो गया है, ज़रा देखिए आपके बच्चों में तो नहीं मिल गया। मैं फ़ेल हो गया हूं, परीक्षक ने बेईमानी की है। ज़रा वाइस-चांसलर साहब से चलकर कह दीजिए, और फ़ॉरिन स्कॉलरशिप भी तो वाइस-चांसलर साहब ही के हाथ में है, मेरा एक साल बच जाएगा। ज़मींदारी का हाल तो आपको मालूम ही है!…"

यूनिवर्सिटी पहुंचा। इतने लैक्चर हैं। इतने ट्यूटोरियल। इतनी

१. पवित्र चटाई, जिसपर नमाज़ पढ़ी जाती है।
२. दल के साथ।
३. पर्दे की जगह—जहां घर की स्त्रियां रहती हैं।

मीटिंगें। इतने इन्टरव्यू। इतनी सिफ़ारिशें।

घर वापस आया। डाक देखी।..."अमुक सज्जन से इतने रुपये ले लिए हैं और कह दिया है कि तुमसे ले लें। अमुक गाड़ी से मैं, अपनी पत्नी, अपने बच्चों, एक नौकर और दोनों करानियों-सहित एक हफ़्ते के लिए आ रहा हूं, बहुत ही आवश्यक काम है। मैं उर्दू में पी०-एच० डी० करना चाहता या चाहती हूं। शीर्षक यह होगा। थीसिस आप लिख दीजिए। एक साहित्यिक सम्मेलन हो रहा है, सभापति बनिए, नहीं तो अपनी नई कविताएं सुनाइए। मेरे नाना परलोक सिधार गए हैं, वैसा ही एक लेख लिख दीजिए, जैसा आप ऐसे अवसरों पर लिखा करते हैं। आपके यहां से जिन लोगों ने उर्दू में डॉक्टरेट प्राप्त की है, उनके थीसिस का सारांश लिख भेजिए।..."

खाना खाने बैठा। नौकरों की चोरी। गंदगी। निकम्मापन और दूसरों के सदाचार और स्वभाव पर झगड़ा शुरू हो गया। नौकरों-सहित सबने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योग दिया। खाना समाप्त हुआ। बात बढ़ गई। कमरे में आकर लेटा। बरामदे में बच्चों ने फ़ुटबाल शुरू कर दिया। सिलाई की मशीन चलने लगी, और नल पर—जो मेरे कमरे की दीवार से लगा हुआ है—कपड़े धोए और पछाड़े जाने लगे।

चार बजते-बजते महिलाएं पधारना शुरू करेंगी। अब मैं कमरे में क़ैद हूं। महिलाओं के साथ उनकी नौकरानियां। नौकरानियों के बच्चे (संख्या के लिए अंक नियत हैं। इनकी संख्या के लिए अब तक अंकों का आविष्कार नहीं हो सका।)। उनको घर में प्रवेश करते देखकर, मुहल्ले के कुत्ते, बिल्लियां, बकरियां, मुर्ग़ियां सब आ पहुंचे। उन सबने सारे फूल-पौधों को रौंद डाला। महिलाओं ने पंखा, पानी, पान आदि मांगा और एकसाथ बोलना, हंसना, खांसना और चीखना शुरू कर दिया और बीच-बीच में सिवाय पीकदान के हर जगह पीक डालनी शुरू कर दी। यह क़ाफ़िला यहां से उठकर कहीं और चला जाएगा। वहां से कहीं और—और मैं क्लब चला जाऊंगा।......

कन्हयालाल कपूर



इनकी जीवनी इन्हीं-की ज़बान से सुनिए :

"नाम कन्हैयालाल कपूर। क़द छः फ़ुट के लग-भग। अपने शरीर के अति-रिक्त सबसे अधिक अपने नाम से चिढ़ है, क्योंकि यह पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रतीत होता है।

"जन्म २७ जून, १६१० को हुआ। शिक्षा एम० ए० (अंग्रेज़ी)। १६३४ से १६४७ तक डी० ए० वी० कालेज, लाहौर में अंग्रेज़ी पढ़ाता रहा। इसके पश्चात् डी० एम० कालेज मोगा में नौकरी कर ली। अभी तक यहीं हूं और उस समय तक रहूंगा, जब तक कोई मुझे उठाकर किसी अच्छे शहर में नहीं ले जाता।

"पांच पुस्तकों का लेखक हूं। जिनके नाम हैं : 'संग-ओ-ख़िश्त', 'शीशा-ओ-तेशा', 'चंग-ओ-रबाब', 'नोक-ए-नश्तर' और 'बाल-ओ-पर'। सारांश यह कि पंजाबी बोलता हूं, उर्दू लिखता हूं और अंग्रेज़ी पढ़ाता हूं। पत्नी केवल एक, लेकिन बच्चे छः हैं। युवा तो युवावस्था में भी न था, अब क्या हूंगा!"

सच्चाई

एक बार न जाने भगवान को क्या सूझी कि उसने चिल्लाकर कह दिया : "सच्चाई !"

आंख झपकने की देर थी कि संसार में सच्चाई का डंका बजने लगा; और बेचारा झूठ दुम दबाकर भाग निकला। सब लोग, यहां तक कि वकील और नीतिज्ञ भी सच बोलने लगे। अतएव जब उस दिन श्रीमान पी० पी० मुकर्जी बार-एट-लॉ, अपने असामी सेठ रामदयाल की ओर से, जिसने क़त्ल का जुर्म किया था, हाईकोर्ट में प्रस्तुत हुए तो उन्होंने माननीय जज को सम्बोधित करते हुए कहा :

"माई लार्ड ! मेरा मुवक्किल रामदयाल पहले दर्जे का बदमाश है। इससे पहले वह चार आदमियों को क़त्ल कर चुका है और हर बार प्रसिद्ध वकीलों की मदद और असर-रुसूख़ से क़ानून के शिकंजे से बचता रहा है। इसने मुझे स्वयं बताया है कि इसने मक़तूल (वधित) को मामूली-सी बात पर पिस्तौल का निशाना बना दिया, और अगर इसका बस चलता, तो यह मक़तूल के बीबी-बच्चों को भी मौत के घाट उतार देता। मैं समझता हूं कि इसने मक़तूल को इस बेदर्दी, इस निर्दयता से क़त्ल किया है कि इसे कड़ी से कड़ी सज़ा मिलनी चाहिए। इसके तमाम गवाह झूठे हैं; क्योंकि उन सबने रिश्वत लेकर गवाही दी है। माई लार्ड ! मैं अदालत का समय नष्ट नहीं करना चाहता; मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुलज़िम को फांसी की सज़ा दी जाए। जो तीन हज़ार रुपये मैंने मुलजिम से अपनी फ़ीस के लिए हैं; वे मैं आपके सामने इसे वापस करता हूं। माई लार्ड ! मुझे बड़ी ख़ुशी होगी अगर रामदयाल ऐसे गुण्डे को अपने किए की पूरी-पूरी सज़ा मिले !"

(२)

राजनीतिज्ञों की एक सभा में प्रधानमंत्री ने एक पिछड़े हुए देश के प्रतिनिधि को सम्बोधित करते हुए यह भाषण दिया :

"श्रीमानजी ! वास्तविकता यह है कि हम आपके देश पर शासन करना चाहते हैं, क्योंकि हमें पैट्रोल और मिट्टी के तेल की अत्यन्त आवश्यकता है। यह नितान्त असत्य है कि हम आपको सभ्यता सिखाना चाहते हैं; क्योंकि जहां तक सभ्यता का सम्बन्ध है, आपका देश हमारे से कहीं अधिक सभ्य है। पैट्रोल और तेल के अतिरिक्त हमारी नजर गेहूं के भण्डारों और सोने-चांदी की खानों पर भी है। वास्तविकता यह है कि सैन्य शक्ति की दृष्टि से आपका देश इतना क्षीण है कि उसकी ओर देखते ही आप ही आप हमारे मुंह में पानी भर आता है। यदि आपके पास पर्याप्त संख्या में टैंक और बममार होते तो हम कभी आपके देश की ओर आंख उठाकर न देखते। मैं मानता हूं कि हमें आपका देश लूटने का कोई अधिकार नहीं; किन्तु क्या किया जाए, आप दुर्भाग्यवश निर्बल हैं और इस समय संसार में जिसकी लाठी उसीकी भैंस का नियम चल रहा है।"

(३)

'कमाल' मूवीटोनवालों ने अपनी फ़िल्म का विज्ञापन निम्नलिखित शब्दों में दिया :

"हमारी नई फ़िल्म का नाम 'धमा-धम मस्त क़लंदर' है। ज़रा ध्यान दीजिए। कितना बेहूदा नाम है ! कहानी डायरेक्टर साहब ने स्वयं लिखी है ; जिन्हें कहानी लिखने का कोई अनुभव नहीं। वास्तव में उन्होंने यह कहानी हालीवुड की चार फ़िल्मों से चुराई है, लेकिन इस चोरी के बावजूद कोई बात पैदा नहीं कर सके। संवाद और गीत एक ऐसे व्यक्ति ने लिखे हैं, जिसका नाम लेते हुए हमें लज्जा आती है। हमने यह फ़िल्म केवल पसा कमाने के विचार से बनाई है। इसलिए कला, सदाचार आदि को क़रीब नहीं फटकने दिया। हमें आश्चर्य न होगा यदि इसे एक बार देखने के बाद आप आयु-भर हमपर लानत भेजते रहें। पूरी फ़िल्म में कोई एक दृश्य भी देखने योग्य नहीं। इन समस्त त्रुटियों के बावजूद यदि आप हमारी फ़िल्म देख लें तो आपके ऐसा मूर्खानन्द कोई

न होगा। हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि यदि इस फ़िल्म का नाम 'धमा-धम मस्तक़लंदर' की बजाय 'बिलकुल बकवास' होता तो यह नाम फ़िल्म का सच्चा प्रतीक होता।"

(४)

नहाने का साबुन बनानेवाली एक कम्पनी ने अपने विज्ञापन में लिखा :

"सज्जनो ! हम अपने साबुन के विज्ञापन में हमेशा से यह लिख रहे हैं कि इसमें चर्बी का प्रयोग नहीं किया जाता। यह सरासर झूठ है ! इसके तत्त्वों में चर्बी पर्याप्त मात्रा में मिलाई जाती है। सच तो यह है कि यदि हम चर्बी का प्रयोग न करें तो हम यह साबुन बना ही नहीं सकते। और यदि बना लें तो इस दाम पर आपको नहीं दे सकते। यहां हम यह भी बता देना चाहते हैं कि हमने प्रसिद्ध फ़िल्मी सितारों को बड़ी-बड़ी रिश्वतें देकर इस साबुन के बारे में उनकी रायें प्राप्त की हैं। वरना फ़िल्मी सितारे इतने सीधे नहीं कि अपनी त्वचा की रक्षा के लिए ऐसे घटिया साबुन का प्रयोग करें। हम प्रायः यह भी कहा करते हैं कि इस साबुन की 'क्वालिटी' में शुरू से कोई तब्दीली नहीं आई। यह बात भी दूसरी बातों की तरह सरासर झूठी है। वास्तविकता यह है कि जब से हमारे साबुन ने लोकप्रियता प्राप्त की है, हमने इसके तत्त्वों से ज़ैतून का तेल निकालकर सरसों का तेल शामिल कर दिया है।"

(५)

एक पेटेंट ओषधि के विज्ञापनकर्ता ने अपने पिछले विज्ञापनों में इस प्रकार का संशोधन किया :

"सज्जनो ! आप सचमुच बहुत ही मूर्ख हैं, जो हमारी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाते हैं। आपसे किस मसख़रे ने कहा है कि 'शाशोषण' समस्त रोगों की एक ही ओषधि है। ज़रा सोचिए तो सही कि यह कैसे संभव हो सकता है। 'शाशोषण' वास्तव में चूने का पानी है जिसमें हमने थोड़ा-सा लाल रंग इसलिए मिला रखा है कि आपको इस ओषधि की वास्तविकता का पता न चल सके। संभव है यह ओषधि एक-आध रोग के लिए लाभदायक हो; लेकिन इसका एकसाथ हैज़ा, प्लेग और गठिया के लिए लाभदायक होना एक ऐसी गप्प है जिसपर केवल कोई

महामूर्ख ही विश्वास कर सकता है। हमने इस औषधि का मूल्य पांच रुपये प्रति शीशी नियत कर रखा है। आप यह पढ़कर हैरान होंगे कि इसपर हमारी लागत पांच आने भी नहीं आती। बाक़ी रहे सर्टिफ़िकेट! इनमें से तीन-चौथाई फ़र्ज़ी हैं और बाक़ी हमने अपने मित्रों और सगे-सम्बन्धियों से लिखवाए हैं। यह तो राज्य की हमपर अनुकम्पा समझिए कि हमें इस ओषधि को बेचने की खुली छूट दे रखी है, वरना इस ओषधि के सम्बन्ध में यदि हमारी घोषणाओं की जांच-पड़ताल की जाए तो इस समय हमें जेल में होना चाहिए।"

(६)

एक लिमिटिड कम्पनी के डायरेक्टरों ने अपनी कम्पनी के प्रॉस्पैक्टस में लिखा :

"हम चंद लोगों ने मिलकर यह कम्पनी खोली है। हमारा उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट है और वह यह है कि हम लोगों की जेबों से पैसा निकालकर अपनी जेबें गर्म करना चाहते हैं। हम जनता को सौ-सौ रुपये के दस हज़ार हिस्से ख़रीदने की दावत देते हैं। इस प्रकार हमारे पास दस लाख रुपया आ जाएगा। हम यह रुपया कुछ महीनों में हड़प कर जाएंगे और उसके बाद कम्पनी के दिवाले की घोषणा कर देंगे। यह कम्पनी खड़ी करने से पूर्व हम विभिन्न नामों से बहुत-से जाली बैंक, कम्पनियां और व्यापारिक संस्थाएं स्थापित कर चुके हैं; लेकिन जनता यानी आप लोग कुछ ऐसे मूर्ख हैं कि एक बार हानि सहन करने पर भी फिर हमारे चंगुल में फंस जाते हैं। 'भारत के उद्योग में वृद्धि'—नामक जो उद्देश्य हमारी कम्पनी का है, वास्तव में यह बहुत बड़ा ढोंग है; लेकिन अगर आपको इस प्रकार के सब्ज़ बाग़ न दिखाए जाएं तो आपका सहयोग कैसे प्राप्त हो!"

(७)

एक डाक्टर ने एक रोगी को यह परामर्श दिया :

"महाशयजी! आप बिलकुल भले-चंगे हैं। मैं केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिए आपको तरह-तरह के भ्रमों में उलझाता रहता हूं। वास्तव में मेरा मनोरथ भय उत्पन्न करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। मैं जानबूझकर भयानक रोगों के लम्बे-लम्बे नाम लेकर

आपको सावधान रहने का परामर्श देता रहता हूं। मैंने आपके रक्त, थूक और मूत्र को इसलिए टेस्ट करवाया, क्योंकि मैंने हर डाक्टर के साथ अपनी कमीशन ठहरा रखी है। आपकी छाती में जो कभी-कभी पीड़ा होती है, उसका कारण अपच है, 'क्षय' नहीं। यदि आप आहार के सम्बन्ध में थोड़ी-सी सावधानी से काम लें, तो आप दो-चार दिन में स्वस्थ हो सकते हैं। वे जो बारह टीके मैंने आपकी बांहों में घोंपे हैं, उनमें नमक के पानी के सिवा कुछ भी न था; लेकिन मैंने आपसे यह कहकर कि इसमें सोने-चांदी के सम्मिश्रण हैं, आपसे सैकड़ों रुपये बटोरे। इन टीकों का आपको यह लाभ हुआ कि आप पहले से भी दुर्बल हो गए; और आपमें चलने-फिरने तक की शक्ति न रही। सच बात तो यह है कि यदि आप मेरे पास न आते तो आपके स्वास्थ्य की अधिक संभावना थी।"

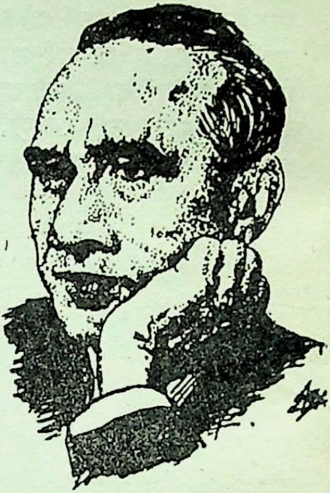
(८)

एक प्रोफ़ेसर ने एक विद्यार्थी को सर्टिफ़िकेट देते हुए कहा :

"मैं तसदीक़ करता हूं कि रामदयाल अव्वल दर्जे का नालायक़ और अशिष्ट है। जहां तक मुझे स्मरण है, वह क्लास में कभी निचल्ला नहीं बैठा। प्रतिदिन लड़कियों पर काग़ज़ के गुब्बारे, चाक के टुकड़े और केले के छिलके फेंका करता था। एक बार जब मैं ब्लैक-बार्ड पर कुछ लिख रहा था तो उसने मुझपर भी दो गले-सड़े अण्डे फेंके थे। वह अंग्रेज़ी लिख सकता है न पढ़ सकता है; क्योंकि जिस समय मैं अंग्रेज़ी पढ़ाता था, वह मज़े से चिलगोज़े खाया करता था। उसकी आदतें बड़ी गंदी और घिनौनी हैं। कामचोर वह इतना है कि आज का काम कल की बजाय परसों पर छोड़ता है। मैंने उस ऐसा मुंह-फट और अधम विद्यार्थी अपने पूरे जीवन में नहीं देखा। एक बार जब मैंने उसे एक विषय में फ़ेल कर दिया तो उसने मुझे क़त्ल कर डालने का धमकी दी। मैं निःसंकोच यह लिख सकता हूं कि जो व्यक्ति राम-दयाल को नौकरी देगा, वह एक ऐसी मुसीबत मोल लेगा जिसका कोई इलाज नहीं। मेरे ख़्याल में रामदयाल विद्यार्थी नहीं, 'चलती-फिरती लानत है'!"

(९)

सच्चाई का यह ज़माना बहुत शीघ्र समाप्त हो गया; क्योंकि इस नये ज़माने में सैकड़ों लोग बेकार हो गए। हजारों भूखे मरने लगे। चोरों, ठगों और डाकुओं ने अपना सिर पीट लिया। व्यापार, कारोबार और कलाकौशल में पहली-सी गहमी-गहमी न रही। संसार पर एक गहरी शिथिलता छा गई और जब भगवान ने आकाश से झांककर धरती की ओर देखा तो उसे मनुष्य जाति पर बड़ी दया आई। इससे पूर्व कि मनुष्य पुकारकर कहते, 'ऐ दोनों लोकों के स्रष्टा! अपना यह आदेश वापस ले ले!' उसने अपना आदेश वापस ले लिया।



पतरस बुख़ारी

'पतरस के मज़ामीन' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक के लेखक पतरस बुख़ारी बहुत बड़े व्यक्ति और असाधारण गुणों के मालिक थे। वे गवर्नमैंट कालेज लाहौर में प्रोफ़ेसर रहे। फिर ऑल इंडिया रेडियो के डायरेक्टर-जनरल, देश-विभाजन के बाद गवर्नमैंट कालेज लाहौर के प्रिंसिपल और फिर यू० एन० ओ० में पाकिस्तान के प्रतिनिधि। और वहीं एक साल पूर्व उनका देहांत हो गया।

'पतरस के मज़ामीन' उर्दू साहित्य की बहुत बड़ी निधि है।

सवेरे जो कल मेरी आंख खुली

गीदड़ की मौत आती है तो शहर की ओर भागता है। हमारी जो शामत आई तो एक दिन अपने पड़ौसी लाला कृपाशंकर भारद्वाज से कह बैठे कि लालाजी! परीक्षा के दिन क़रीब आते-जाते हैं। आप सुबह जल्दी उठने के आदी हैं, ज़रा हमें भी जगा दिया कीजिए।

वे महाशय, मालूम होता था, इस इन्तज़ार ही में थे। दूसरे दिन उठते ही उन्होंने भगवान का नाम लेकर हमारे दरवाज़े पर मुक्केबाज़ी शुरू कर दी। कुछ देर तक तो हम समझे कि सपना देख रहे हैं, अभी से क्या चिन्ता, जागेंगे तो लाहौल पढ़ लेंगे। लेकिन यह गोलाबारी प्रतिक्षण तेज़ होती गई और जब कमरे की दीवारें कांपने लगीं, सुराही पर रखा हुआ गिलास जलतरंग की तरह बजने लगा और दीवार पर लटका हुआ कैलेंडर पैंडुलम की तरह हिलने लगा, तो मानना पड़ा कि हम जाग रहे हैं। मगर अब दरवाज़ा है कि बराबर खटखटाया जा रहा है। मैं क्या मेरे पूर्वजों की आत्माएं और मेरे सोए भाग्य भी जाग उठे होंगे। बहुतेरा आवाज़ें देता हूं, "...अच्छा, अच्छा! ...थैंक यू...जाग गया हूं...बहुत अच्छा, शुक्रिया!" लेकिन वे सज्जन हैं कि सुनते ही नहीं। हे भगवान! किस मुसीबत में फंस गया! ये सोते को जगा रहे हैं या मुर्दे को जिला रहे हैं। और हज़रत ईसा भी तो बस धीरे से 'क़ुम' कह दिया करते होंगे। ज़िन्दा हो गया तो हो गया, नहीं तो छोड़ दिया। कोई मुर्दे के पीछे लट्ठ लेकर थोड़े पड़ जाते थे! तोपें थोड़ी दाग़ा करते थे? यह तो भला हमसे कसे हो सकता था कि उठकर दरवाज़े की चटखनी खोल देते। बिस्तर छोड़ने से पहले मन को जिस तरह सम-झाना-बुझाना पड़ता है, उसका अनुमान बिस्तर की नमीं और गर्मी के पारखी ही लगा सकते हैं। आखिर जब लैम्प जलाया और उनको बाहर

से प्रकाश नज़र आया तब जाकर तूफ़ान थमा।

अब जो हम खिड़की में से आकाश को देखते हैं तो सितारों से दमक रहा है। सोचा, आज पता चलाएंगे कि यह सूरज आखिर किस प्रकार उदय होता है। लेकिन जब घूम-घूमकर खिड़की और रोशनदान में से चारों ओर देखा और बुज़ुर्गों से उषा के जितने चिह्न या लक्षण सुने थे, उनमें से एक भी नज़र न आया, तो चिन्ता हुई कि आज कहीं सूर्यग्रहण न हो! कुछ समझ में न आया तो पड़ोसी को आवाज़ दी, "लालाजी! ··· लालाजी!!"

उत्तर मिला, "हूं।"

मैंने कहा, "आज यह क्या बात है? कुछ अंधेरा-अंधेरा-सा है!"

कहने लगे, "तो क्या तीन बजे ही सूरज निकल आए! ···"

तीन बजे का नाम सुनकर होश उड़ गए। चौंककर पूछा, "क्या कहा तुमने? तीन बजे हैं?"

बोले, "ठीक तीन···तो···नहीं···कोई सात···साढ़े सात मिनट ऊपर तीन हैं।"

मैंने कहा, "अरे कमबख्त, मैंने तुझसे यह कहा था कि सुबह जगा देना या यह कहा था कि सिरे से सोने ही नहीं देना। तीन बजे जगाना भी कोई शराफ़त है। हमें तूने कोई रेलवे-गार्ड समझ रखा है? हम अगर तीन बजे उठ सका करते, तो अपने दादा की आंख का तारा न होते। अबे ओ मूर्खानन्द! तीन बजे उठकर हम कैसे ज़िन्दा रह सकते हैं? अमीरज़ादे हैं, कोई मज़ाक है!"

दिल तो चाहता था कि अहिंसा-वहिंसा को एकदम तज दूं, लेकिन फिर ख्याल आया कि मानव जाति के सुधार का ठेका कोई हमीने ले रखा है? हमें अपने काम से मतलब है। लैम्प बुझाया और बड़बड़ाते हुए फिर सो गए।

और फिर नियमानुसार भले आदमियों की तरह दस बज उठे। बारह बजे तक मुंह-हाथ धोया और चार बजे चाय पीकर ठंडी सड़क की सैर को निकल गए।

शाम को वापस होस्टल में प्रवेश किया। जवाना के दिन, इसपर शाम का सुन्दर वातावरण। वायु भी बड़ी मधुर थी और तबीयत भी

ज़रा मचली हुई थी। हम ज़रा तरंग में गाते हुए दाखिल हुए :

"बलाएं[1] ज़ुल्फ़े-जानां[2] की अगर लेते तो हम लेते"...

कि इतने में पड़ोसी की आवाज़ आई, "मिस्टर !"

हम उस समय ज़रा चुटकी बजाने लगे थे कि उंगलियां वहीं पर रुक गईं और कान आवाज़ पर लग गए। फ़र्माया, "यह आप गा रहे हैं ('आप' शब्द पर ज़ोर) ?"

मैंने कहा, "अजी मैं किस योग्य हूं। लेकिन खैर, क्या हुक्म है ?"

बोले, "ज़रा...वह...मैं...डिस्टर्ब होता हूं !"

बस साहब, हममें जो संगीत की आत्मा पैदा हुई थी, तुरन्त मर गई। दिल ने कहा, 'ओ धूर्त ! देख, पढ़नेवाले यों पढ़ते हैं।' और भगवान को साक्षी जान गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की, 'हे भगवान ! अब हम भी नियमपूर्वक अध्ययन शुरू करनेवाले हैं। हमारी सहायता कर और हमें शक्ति दे !'

आंसू पोंछकर और दिल कड़ा करके मेज़ के सामने आ बैठे। दांत भींच लिए। नेकटाई खोल दी। आस्तीनें चढ़ा लीं। लेकिन कुछ समझ में न आया कि क्या करें ! सामने लाल, पीली, हरी प्रकार की पुस्तकों का ढेर लगा था। अब इनमें से कौन-सी पढ़ें ? सोचा, पहले पुस्तकों को तरतीबवार लगा दें क्योंकि नियमपूर्वक अध्ययन की पहली मंज़िल यही है।

बड़े आकार की पुस्तकों को अलग कर दिया और छोटे आकार की पुस्तकें अलग पंक्ति में खड़ी कर दीं। एक काग़ज़ पर हर पुस्तक के पन्नों की संख्या लिखकर सबको जोड़ा। फिर १५ अप्रैल तक के दिन गिने। पन्नों की संख्या का दिनों की संख्या से विभाजन किया। उत्तर निकला—साढे पांच सौ। पर क्या मजाल जो चेहरे पर घबराहट पैदा हो। दिल में थोड़ा-सा पछताए कि सुबह तीन ही बजे क्यों न उठ बैठे। लेकिन अनिद्रा के चिकित्सा-सम्बन्धी पहलू पर विचार किया तो तुरन्त अपने-आपको कोसा। आखिर इस परिणाम पर पहुंचा कि तीन बजे उठना तो बकवास है; हां, पांच, छः या सात बजे के लगभग उठना उचित होगा। स्वास्थ्य भी बना रहेगा और परीक्षा की तैयारी भी बाक़ायदा होगी।

१. चुम्बन २. प्रेयसी के केशों का

यह तो हम जानते हैं कि सवेरे उठना हो तो जल्दी सो जाना चाहिए। खाना बाहर ही से खा आए थे इसलिए बिस्तर में पहुंच गए। बिस्तर में पहुंचने से पहले ख्याल आया कि लालाजी से जगाने के लिए कह ही दें। यों हमारी संकल्प-शक्ति काफी ज़बर्दस्त है, जब चाहें उठ सकते हैं; फिर भी कहने में क्या बुराई है। डरते-डरते आवाज़ दी, "लालाजी!"

उन्होंने पत्थर खेंच मारा, "बस।"

हम और भी सहम गए कि लालाजी कुछ नाराज़ मालूम होते हैं। तुतलाकर प्रार्थना की, "लालाजी! सुबह आपको बड़ा कष्ट हुआ। मैं आपका बहुत आभारी हूं। कल अगर ज़रा मुझे छः बजे···यानी जिस वक्त छः बजें···"

उत्तर नहीं मिला।

मैंने फिर कहा, "जब छः बज चुकें तो···सुना आपने।"

चुप!

"लालाजी!"

कड़कती हुई आवाज़ ने उत्तर दिया, "सुन लिया, सुन लिया! छः बजे जगा दूंगा···थ्री गामा प्लस फ़ोर एल्फ़ा प्लस···"

हमने कहा, "ब···ब···बहुत अच्छा।"

तोबा! भगवान किसीका आश्रित न करे!

लालाजी आदमी बहुत शरीफ़ हैं; अपने वायदे के अनुसार दूसरे दिन सुबह छः बजे उन्होंने दरवाज़े पर घूंसों की वर्षा शुरू कर दी। उनका जगाना तो केवल सहारा-मात्र था। हम स्वयं ही प्रतीक्षा कर रहे थे कि यह सपना समाप्त हो ले तो बस जागते हैं। वे न जगाते तो मैं स्वयं एक-दो मिनट बाद आंखें खोल देता। जो हो, जैसाकि मेरा कर्तव्य था, मैंने उनका धन्यवाद किया। उन्होंने इस रूप में स्वीकार किया कि गोलाबारी बन्द कर दी।

इसके बाद जो कुछ हुआ उसमें विवाद की गुंजाइश है। इस बात का तो मुझे विश्वास है और मैं क़सम भी खा सकता हूं कि मैंने आंखें खोल दी थीं। फिर यह भी याद है कि उठने से पूर्व भूमिका के तौर पर एक-आध करवट भी ली थी। उसके बाद का कुछ ज्ञान नहीं। शायद रज़ाई

ऊपर से उतार दी। शायद सिर उसमें लपेट लिया या शायद खांसा या खर्राटा लिया। ख़ैर, यह तो यक़ीनी बात है कि दस बजे हम बिलकुल जाग रहे थे। लेकिन लालाजी के जगाने के बाद और दस बजे से पहले भगवान जाने हम पढ़ रहे थे या सो रहे थे। नहीं, हमारा ख्याल है कि पढ़ रहे थे या शायद सो रहे हों। बहरहाल यह मनोविज्ञान की समस्या है; जिसमें न आप निपुण हैं न मैं। क्या मालूम लालाजी ने जगाया ही दस बजे हो या उस दिन छः देर से बजे हों ? भगवान के कामों में हम हस्त-क्षेप करनेवाले कौन ! लेकिन हमारे मन में दिन-भर यह सन्देह रहा कि दोष कुछ अपना ही मालूम होता है और हम दिन-भर अपने-आपको कोसने देते रहे और शराफ़त देखिए कि लालाजी से हंस-हंसकर बातें करते रहे। उन्हें बार-बार धन्यवाद दिया कि उनकी कृपा से सुबह का सुहाना समय बड़े आनन्द में व्यतीत किया अन्यथा अन्य दिनों की तरह आज भी दस बजे उठते, "लालाजी ! सुबह के समय दिमाग कितना साफ़ होता है ! जो पढ़ो, भगवान की सौगन्ध, तुरन्त याद हो जाता है। भई, भगवान ने सुबह भी क्या चीज़ बनाई है। मेरा मतलब है अगर सुबह-सुबह ही शाम हो जाया करती, तो दिन कितनी बुरी तरह कटते !"

लालाजी ने हमारे इस सुन्दर भाषण की प्रशंसा इन शब्दों में की, "तो मैं आपको छः बजे जगा दिया करूं ना ?"

मैंने कहा, "हां, हां ! वाह, यह भी कोई पूछने की बात है !"

शाम के समय आनेवाली सुबह के अध्ययन के लिए दो पुस्तकें छांटकर मेज़ पर अलग जोड़ दीं। कुर्सी को पलंग के पास सरका लिया। ओवरकोट और गुलूबन्द को कुर्सी की पीठ पर जमा दिया। कंटोप और दस्ताने पास ही रख लिए। दियासलाई को तकिये के नीचे टटोला और भगवान का नाम लेकर अपने प्रति शुभकामनाओं के साथ सो गया।

सुबह लालाजी की पहली दस्तक के साथ ही आंख खुल गई। बड़े सादर भाव से रज़ाई की एक 'खिड़की' में से उनको 'गुड मार्निङ्ग' किया और बड़े ही खिन्न भाव से खांसा। लालाजी सन्तुष्ट होकर वापस चले गए।

हमने अपनी उत्साहशीलता को बहुत सराहा कि आज हम तुरन्त जाग पड़े। घृणा-भाव से उन आलसी लोगों के बारे में सोचा जो ऐसे

सुहाने समय में लम्बी ताने सोते रहते हैं। यह सोच ही रहे थे कि नाक को ज़रा सर्दी लगी। हमने योंही उसे रज़ाई की ग्रोट में कर लिया ग्रौर फिर सोचने लगे, '...ख़ूब। ता हम ग्राज क्या ठीक समय पर जागे हैं! बस, ज़रा इसकी ग्रादत हो जाए तो मज़ा ग्रा जाए। बुज़ुर्ग ठीक ही तो सवेरे जागने की सराहना करते हैं...... (रज़ाई कानों पर सरक ग्राई)...तो ग्राज हम ग्रौर लोगों से पहले जागे हैं...बहुत ही पहले... यानी कालेज शुरू होने से भी चार घंटे पहले...वाह, क्या बात है! कालेज के संचालक भी कितने सुस्त हैं! हर समझदार व्यक्ति को छः बजे ग्रवश्य जाग पड़ना चाहिए। समझ में नहीं ग्राता कि कालेज सात बजे क्यों न शुरू हुग्रा करे...(रज़ाई सिर पर)...बात यह है कि नई सभ्यता हमारी समस्त सुन्दर परम्पराग्रों का सत्यानाश कर रही है। ग्रारामतलबी दिनोंदिन बढ़ रही है...(ग्रांखें बन्द)...तो ग्रब छः बजे हैं। इसका मतलब है, निरन्तर तीन घंटे ग्रध्ययन किया जा सकता है। प्रश्न केवल यह है कि पहले कौन-सी पुस्तक पढ़ें? शेक्सपियर या वड्-ज़ंवर्थ? मैं जानूं शेक्सपियर बेहतर होगा। उसकी महान रचनाग्रों में भगवान की महानता के लक्षण पाए जाते हैं ग्रौर सुबह के समय भग-वान की याद से ग्रच्छी बात ग्रौर क्या हो सकती है!' फिर ख्याल ग्राया, 'दिन को भावों के रंगमहल से शुरू करना ठीक दर्शन नहीं। वड्ज़ंवर्थ पढ़ें। उसके पन्नों में ग्रात्मा को शान्ति मिलेगी ग्रौर मन तथा मस्तिष्क प्रकृति की मौन सुन्दरता से विभोर हो उठेंगे...लेकिन शेक्सपियर...नहीं वड्ज़ंवर्थ ही ठीक रहेगा...शेक्सपियर...हेमलेट... लेकिन वड्ज़ंवर्थ...उन्माद...सुन्दर वाटिकाएं...मंद गति से बहता हुग्रा समीर...विलास का पुजारी...कश्मीर...मैं ग्राफ़त का परकाला हूं...?'

यह पहेली भी सुलझाए नहीं सुलझती कि फिर क्या हुग्रा? क्योंकि फिर जो हमने रज़ाई से सिर बाहर निकाला ग्रौर वड्ज़ंवर्थ पढ़ने का इरादा किया तो वही दस बज रहे थे। इसमें न जाने क्या भेद है!

कालेज के हाल में लालाजी मिले। कहने लगे, "मिस्टर! सुबह मैंने ग्रापको फिर ग्रावाज़ दी थी, ग्रापने उत्तर नहीं दिया।"

मैंने ज़ोर का कहकहा लगाकर कहा, "लालाजी, याद नहीं, मैंने आपको 'गुड मार्निंग' कहा था ! मैं तो पहले ही से जाग रहा था।"

बोले, "वह तो ठीक है, लेकिन बाद में...उसके बाद...कोई सात बजे के लगभग मैंने आपसे तारीख़ पूछी थी। आप बोले ही नहीं।"

हमने इस आश्चर्य से उनकी ओर देखा, मानो वे पागल हो गए हों। और फिर गंभीर मुद्रा धारण कर माथे पर त्योरी चढ़ाकर चिंतनमग्न हो गए। एक-आध मिनट तक इस स्थिति में रहे, फिर एकाएक बड़ी सुन्दर मुस्कराहट के साथ कहा, "हां, ठीक है, ठीक है...हम उस वक्त ज़रा भगवान का नाम ले रहे थे।"

लालाजी प्रभावित होकर चल दिए और हम अपनी आस्तिकता की सरलता के वशीभूत हो सिर झुकाए अपने कमरे की ओर चले आए।

अब यही हमारा नियम हो गया। जागना नम्बर एक, छः बजे। जागना नम्बर दो, दस बजे। इस बीच में लालाजी आवाज़ दें तो भगवान का नाम !

जागने की अभिलाषा कुछ इस प्रकार की रही है कि सूरज की पहली किरनें हमारे काले और घुंघराले बालों पर पड़ रही हों। कमरे में फूलों की सुगंध फैली हो। कोमल, सुन्दर हाथ अपनी उंगलियों से सितार के तारों को धीरे-धीरे छेड़ रहे हों और इश्क़ में डूबी हुई सुरीली आवाज़ मुस्कराती हुई गा रही हो :

"तुम जागो मोहन प्यारे !"

सपनों की सुनहली धुंध धीरे-धीरे संगीत की लहरों में विलीन हो जाए और जागने की अंगड़ाई मनमोहक जादू की तरह अंधेरे के महीन पर्दे को धीरे-धीरे सरका दे। चेहरा किसी अलौकिक सुन्दरी की प्यार-भरी नज़रों की गर्मी महसूस कर रहा हो। आंखें मंत्रमुग्ध होकर खुलें और चार हो जाएं। मनोरम मुस्कान सुबह को और भी प्रकाशमान कर दे और गीत 'सांवरी सूरत तेरी मन को भाई !' के साथ ही लज्जा में डूब जाए।

लेकिन भाग्य यह है कि पहले 'मिस्टर, मिस्टर' की आवाज़ और दरवाज़े की दनादन सुनाई देती है और फिर चार घंटे बाद कालेज का घड़ियाल दिमाग़ के हर कोने-खुदरे में दस बजाना शुरू कर देता है और

इस चार घंटे की अवधि में गड़वियों के गिर पड़ने, पतीलों के उलट जाने, दरवाज़ों के बंद होने, पुस्तकों के झाड़ने, कुर्सियों के घसीटने, कुल्लियां और ग़रारे करने और खांसने और खखारने की आवाज़ें मानो ठुमरियां बन जाती हैं। अनुमान कर लीजिए कि इन साज़ों में सुर-ताल की कितनी गुंजाइश है !

"मौत मुझको दिखाई देती है,
जब तबीयत को देखता हूं मैं।"



शौकत थानवी

१९४७ से पहले लखनऊ में और १९४७ के बाद से लाहौर में अपनी ज़बान और अपनी क़लम से कहकहों की फुलझड़ियां छोड़नेवाले शौकत थानवी का असल नाम मोहम्मद उमर और वतन 'थाना भुवन' है। आधुनिक काल के हास्य-लेखकों में शायद उन्होंने सबसे अधिक लिखा है। एक ही बैठक में वे इस तेज़ी से पन्नों के पन्ने लिख जाते हैं कि मालूम होता है, वे लिखते पहले हैं, सोचते बाद में हैं। दर्जनों पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फ़िल्मी कहानियां भी लिखी हैं और रेडियो के लिए नाटक, बातचीत और फ़ीचर भी। उनका एक रेडियो फ़ीचर 'क़ाज़ीजी' इतना प्रसिद्ध हुआ है कि १९४७ से अब तक बराबर रेडियो पाकिस्तान से ब्राडकास्ट हो रहा है।

छलांग

लाहौर पहुंचकर मैं सीधा मसऊद के घर पहुंचा तो वे हज़रत ग़ायब। मालूम हुआ, कहीं घूमने गए हैं। ख़ैर, वे घूमने जाएं या जहन्नुम में, घर तो उनका मौजूद ही था। सामान रखकर बड़े सन्तोष के साथ नहाया-धोया। कपड़े बदले और उनके नौकर से कहा, "चाय लाओ।" यह नौकर भी कोई नया जानवर फंसा था शायद। एक तो वह शुरू से आखिर तक ऐसी संदिग्ध नज़रों से देख रहा था जैसे मैं उसके मालिक का मेहमान न होकर कोई उठाईगीरा हूं और उस घर से कुछ न कुछ उठाकर भागने ही वाला हूं। दूसरे यह मालूम होता था कि यह आदमी आज तक किसी सभ्य व्यक्ति के यहां नहीं रहा है और मसऊद को भी अभी इसे इन्सान बनाने का अवसर नहीं मिला। सभ्यता देखिए कि गिलास में बनी-बनाई चाय लाकर तिपाई पर रख दी। मैंने आश्चर्य से पहले उस बेहूदा चाय को देखा फिर उस चाय लानेवाले को, जो स्वयं मुझे खा जानेवाली नज़रों से देख रहा था। मैं उससे बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन केवल इतना कह सका :

"यह क्या है ?"

उसने जले-भुने स्वर में कहा, "चाय है और क्या है !"

मैंने अब ज़रा विस्तार से कहा, "चाय तो है मगर गिलास में ?"

उसने मुंहतोड़ उत्तर दिया, "और नहीं तो क्या घड़े में लाता ?"

अब मैंने अपने बारे में कुछ कहना अनुचित समझकर कहा, "क्या मसऊद गिलास में चाय पीने लगे हैं ?"

उसने बहुत खुर्रे स्वर में कहा, "वो नहीं पीते चाय-वाय ! वो लस्सी पीते हैं।"

अब मैं उस नौकर के मुंह क्या लगता ! उससे कह दिया, यह चाय

ले जाओ। और स्वयं मसऊद ही के बिस्तर पर लेटकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। पास ही पिछले महीने की किसी तारीख़ का कोई फटीचर-सा समाचारपत्र पड़ा था। देर तक उसीको देखता रहा। उसमें छपी पूरी पहेली हल कर डाली। उसमें छपे विज्ञापन तक पढ़ डाले; लेकिन मसऊद को न आना था, न आए। आखिर मैं उठा और इस विचार से कि शायद कोई और चीज़ पढ़ने को मिल जाए, अलमारी की पड़ताल करना ही चाहता था कि नुमाइश का पास सामने पड़ा नज़र आया। बस, तुरन्त यह प्रोग्राम बना लिया कि यहां पड़े-पड़े प्रतीक्षा करने की बजाय नुमाइश ही देख आएं। इस बीच में मसऊद भी घर आ जाएंगे। पास उठाकर जेब में रखा और उसी जंगली नौकर से नुमाइश का पता पूछकर नुमाइश जा पहुंचे। गेट पर वह पास दिखाकर भीतर जाना ही चाहते थे कि गेटकीपर ने पास पर लिखा हुआ नाम पढ़कर जैसे कुछ चौंकते हुए कहा, "आप ही हैं प्रोफ़ेसर मसऊद ?"

प्रत्यक्ष है, ऐसे अवसरों पर केवल झूठ ही बोला जा सकता है; अन्यथा यह प्रश्न पैदा होता है कि आप प्रोफ़ेसर मसऊद नहीं हैं तो उनके नाम का पास क्यों लाए ? इसलिए विनयपूर्वक निवेदन किया, "अब मैं अपने मुंह से क्या कहूं !"

गेटकीपर मुझे उत्तर देने की बजाय चीखने लगा, "चौधरी साहब ! ये आ गए हैं प्रोफ़ेसर मसऊद !"

और इस आवाज़ पर एक बौखलाए हुए व्यक्ति बल्कि बुज़ुर्ग ने लपककर मेरी बांह थाम ली और अपनी ओर घसीटते हुए कहा, "अरे साहब, कमाल कर दिया आपने भी ! आज नुमाइश का पहला दिन है और आपने आज ही सारा प्रोग्राम गड़बड़ कर दिया होता—अगर ज़रा देर और हो जाती ! लोगों का हुजूम है और आप ग़ायब !" वे कहते जा रहे थे और घसीटे लिए जा रहे थे। अपनी ही कहते थे और दूसरे की सुनने को तैयार न थे। आखिर एक छोलदारी में लेजाकर सरकस के मसखरोंवाला लिबास मेरी ओर उछालकर कहा, "बस, अब चुटकी बजाते में तैयार हो जाइए, जब तक मैं लाउड-स्पीकर पर ऐलान कराता हूं कि आप पहुंच गए हैं। अजी जनाब ! आपको लेने नुमाइश के मैनेजर साहब ख़ुद दौड़े गए हैं आपके घर !"

मैंने वह मसखरोंवाला लिबास ध्यान से देखकर कहा, "मगर मुझे बताइए तो सही, बात क्या है ?"

वे घबराकर बोले, "अब बात-वात बाद में बताई जाएगी, पहले आप ये कपड़े पहनिए—जल्दी से। कमाल कर दिया आपने भी ! ज़रा वक्त की पाबंदी भी करनी चाहिए आदमी को। और अब भी आप खड़े मुंह देख रहे हैं—लाइए मैं उतारता हूं आपके कपड़े।"

और इससे पूर्व कि मैं कुछ कहूं, उन महोदय ने मेरी अचकन उतारकर एक ओर उछाल दी और झपटे कमीज़ की ओर। मैंने ज़रा बचाव की कोशिश की, तो उनके तेवर बताने लगे कि शायद क़मीज़ फाड़ डालेंगे। इसलिए उन्हें क़मीज़ भी उतार लेने दी और फिर कहा, "जनाब ! आप सिर्फ एक बात सुन लीजिए मेरी !"

वे और भी घबराकर बोले, "कमाल करते हैं आप ! यानी आपको बातों की पड़ी है और वहां नुमाइश के इन्तज़ाम पर हंसी उड़ाई जा रही है। पहले दिन ही अगर हमारी हवा बिगड़ गई तो किसीको मुंह दिखाने के काबिल न रहेंगे !"

अब मैंने उनसे साफ-साफ कहा, "सुनिए जनाब ! मैं यह मसखरों का लिबास कभी नहीं पहनूंगा।"

वे आस्तीनें चढ़ाकर बोले, "पहनेंगे तो आपके फरिश्ते भी ! हम आपसे पहले ही यह शर्त तय कर चुके हैं कि आपको यह लिबास पहनना पड़ेगा। और चेहरे पर भी खड़िया मिट्टी का लेप करके काली लकीरें खींचेंगे।"

मैंने कहा, "मैं आपसे एक बात अर्ज़ करदूं कि मैं असल में......।"

वे एकदम कड़ककर बोले, "मालूम होता है सीधी उंगलियों से घी न निकलेगा ! अजीब आदमी हो, तुम्हें ज़रा भी ख्याल नहीं कि हमारी कितनी हंसी उड़ रही है। हमें धोखेबाज़ समझा जा रहा है कि हम कहते कुछ हैं और दिखाते कुछ और हैं।"

मैंने फिर असली बात कहने की कोशिश की, "भई, मेरी बात तो सुनिए...!"

लेकिन चौधरी साहब ने छोलदारी से बाहर मुंह निकालकर कुछ लोगों को आवाज़ दी, "कल्लू, इमामदीन, भौरी...!"

और तुरन्त ही तीन-चार हट्टे-कट्टे मुस्टंड छोलदारी में आ धमके। चौधरी साहब ने नादिरशाही हुक्म दिया :

"ये हमें ज़लील कराने पर तुले हुए हैं! इन्हें ये कपड़े पहनाकर और मुंह पर खड़िया-वड़िया मलकर वहां लाओ। जब तक मैं ऐलान कराता हूं।"

वे तो यह कहकर चलते बने और यहां इन कसाइयों ने सचमुच मेरे बाकी कपड़े ज़बरदस्ती उतारकर मुझे वह जोकरोंवाला लिबास पहना दिया। और जिस समय वे मेरे चेहरे पर चूना मलकर काली लकीरें खींच रहे थे, मैं पुनः गिड़गिड़ाया :

"भाई, मुझसे चाहे जैसी क़सम ले लो, मैं प्रोफ़ेसर मसऊद नहीं हूं!"

उनमें से एक ने मेरे सिर पर लाल फुंदनेवाली लम्बी-सी टोपी पहनाते हुए कहा :

"यह चकमा किसी और को देना! प्रोफ़ेसर नहीं हो तो पेशगी रुपया क्यों लिया था?"

दूसरे ने कहा, "कोई पूछे, ऐसी हा जान प्यारी थी तो किसने कहा था इस सूली पर लटकने को!"

और उसी समय मैंने लाउड-स्पीकर पर ऐलान सुना :

"आप लोगों को इतना इन्तज़ार करना पड़ा, इसके लिए हम आपसे माफ़ी चाहते हैं। लेकिन हमें इस बात की बड़ी खुशी है कि प्रोफ़ेसर मसऊद गोल्ड मैडलिस्ट पहुंच चुके हैं और मीनार के पास तशरीफ़ ला रहे हैं। आप ज़िन्दगी और मौत का यह खेल देखने के लिए जमा हो जाएं। एक सौ चालीस फुट ऊंचे मीनार से प्रोफ़ेसर मसऊद अपने बदन में आग लगाकर तालाब में छलांग लगाएंगे। आइए...आइए...! प्रोफ़ेसर मसऊद आ गए!! आ गए!!!"

मेरे सारे बदन में पहले तो कंपकंपी पैदा हुई, फिर मालूम हुआ कि नाड़ियों में लहू जम गया है। बड़ी कठिनाई से मेरे कण्ठ से इतना-भर निकल सका, "छलांग!"

और चारों कसाई एकदम हंस पड़े और मुझे छोलदारी के बाहर धक्का दे दिया। यह अवसर ग़नीमत था, इसलिए मैं सिर पर पैर रख-

कर भाग निकला। दो कदम भी न भागा हूंगा कि उनमें से एक ने लपककर मेरी गर्दन पकड़ ली और मुझे झंझोड़कर कहा:

"आखिर तुम चाहते क्या हो! बेईमानी की हद कर दी कि इस वक्त अपना रेट बढ़ाने के लिए ये हरकतें कर रहे हो?"

और उसी समय उन भयानक चौधरी साहब ने आकर कहा:

"कान पकड़े बाबा! कल से यह खेल नहीं होगा। लेकिन आज तो छलांग लगानी ही पड़ेगी।"

मैंने लगभग रोते हुए कहा, "चौधरी साहब! अल्लाह जानता है कि मैं प्रोफ़ेसर मसऊद नहीं हूं। न मैंने कभी छलांग लगाई है, न मैं छलांग लगा सकता हूं। मैं बेमौत मर जाऊंगा। मेरा खून आपकी गर्दन पर होगा। मुझपर यकीन कीजिए, मैं प्रोफ़ेसर मसऊद नहीं हूं!"

चौधरी साहब हैरान होकर बोले, "क्या मतलब? यानी अब तुम प्रोफ़ेसर मसऊद ही नहीं हो?"

मैंने बिलकुल रोते हुए कहा, "अल्लाह जानता है, मैं नहीं हूं प्रोफ़ेसर मसऊद! मैं तो उनका एक मेहमान हूं। आज ही लाहौर से आया हूं। मैं उनका पास उठा लाया था नुमाइश देखने के लिए और यहां आकर इस मुसीबत में फंस गया। मैं आपको आपके बच्चों का वास्ता देता हूं, मुझे बख्श दीजिए!"

ठीक उसी समय लाउड-स्पीकर पर फिर ऐलान हुआ, "एक सौ चालीस फुट मीनार से छलांग! प्रोफ़ेसर मसऊद का ज़िन्दगी और मौत दोनों से मज़ाक़!"

चौधरी साहब ने यह ऐलान सुनकर मेरी अपील नामंज़ूर कर दी, "अब कुछ नहीं हो सकता। तुम प्रोफ़ेसर मसऊद हो या नहीं हो, इससे कुछ नहीं होता। छलांग तो लगानी ही पड़ेगी!"

और मेरे सामने बिजली के रंगारंग हंडों से जगमगाता हुआ वह एक सौ चालीस फुट ऊंचा मीनार था जिसपर चढ़ना ही मेरे लिए असंभव था। चढ़कर फांदने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। उसे देखकर मैंने भय से आंखें बंद कर लीं, लेकिन चौधरी साहब ने मुझे उस मीनार की ओर धकेल दिया। बल्कि घसीटते हुए मीनार तक ले गए। तमाशाइयों ने मुझे देखकर तालियां बजाईं और मुझे लगा मानो ये तालियां

मेरे आत्मा-रूपी पक्षी को उड़ाने के लिए बजाई जा रही हैं। चौधरी साहब ने मेरे हाथ में एक पैट्रोल की बोतल और एक डिबिया दियासलाई की देकर कहा :

"चढ़ जाओ इस मीनार पर और यह पैट्रोल अपने ऊपर छिड़ककर दियासलाई दिखा देना और छलांग लगा देना इस तालाब में, बस छुट्टी !"

छुट्टी तो खैर सदा के लिए होनेवाली थी; लेकिन मैं अब भी भागने की कोशिश में था। तमाशाई बराबर तालियां बजा रहे थे। आखिर मैंने तय किया कि इन तमाशाइयों से साफ़-साफ़ कह दूं कि मुझे ज़बरदस्ती प्रोफ़ेसर मसऊद बनाया जा रहा है और मैं सचमुच मर जाऊंगा। लेकिन उस नक्कारखाने में तूती की आवाज़ सुनता ही कौन ? बेबस हो मैं उस वधस्थल की ओर बढ़ने लगा। ठीक उसी समय लोगों में कुछ हलचल हुई और किसीने ऊंची आवाज़ में पुकारा, "ये आ गए प्रोफ़ेसर मसऊद !"

और चौधरी साहब ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे फिर घसीटा और दौड़ाते हुए छोलदारी में लाकर जल्दी-जल्दी वह मसख़रोंवाला लिबास मेरे बदन से उतारा और एक नवागत को पहनाना शुरू कर दिया। मैंने उस व्यक्ति को देखकर मन में कहा, 'लीजिए, किसी और की शामत आई। अब किसी और को प्रोफ़ेसर मसऊद बनाया जा रहा है। क्योंकि वह व्यक्ति भी प्रोफ़ेसर मसऊद न था। जो कोई भी हो, मेरी बला से ! मैं तो मौत के मुंह से निकल आया था। उस नवागत ने जल्दी से वह लिबास पहना। अपने चेहरे पर बेतुकी रेखाएं बनाई और दौड़ा उस मीनार की ओर।

जब मैं अपने कपड़े पहनकर और मुंह-हाथ धोकर तमाशाइयों में पहुंचा तो वह नवागत एक सौ चालीस फ़ुट की ऊंचाई पर पहुंचकर अपदे बदन पर पैट्रोल छिड़क रहा था। अपने-आपको पैट्रोल से तर करने के बाद दियासलाई जलाकर उसने अपने-आपको आग लगाई और अब जो फांदा है उस मीनार से, तो सीधा तालाब में। वातावरण तालियों के शोर से गूंज उठा। नवागत तालाब से निकलकर छोलदारी की ओर भाग गया। अब तक मेरे मन का बोझ भी हलका हो चुका था और

दिमाग़ में सोचने-समझने की शक्ति भी लौटने लगी थी। इसलिए सबसे पहला प्रश्न मेरे मन में यह आया कि यह प्रोफ़ेसर मसऊद न सही, लेकिन मसऊद ने ये करतब दिखाने कब से शुरू कर दिए ? मसऊद के जीवन के इस पहलू की तो मुझे ख़बर ही नहीं थी। मैं अभी इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि चौधरी साहब ने आकर मुझे फिर घेरा :

"चलिए, आपको प्रोफ़ेसर मसऊद बुलाते हैं, जिनका पास आप चुरा लाए हैं।"

मैं स्वयं यह समस्या सुलझाने के लिए बेचैन था, इसलिए तुरन्त छोलदारी में पहुंच गया। मुझे देखते ही उस नकली मसऊद ने कहा :

"क्यों जनाब, यह मेरा पास आपने कहां से उड़ाया ?"

मैंने उत्तर दिया, "यह आपका नहीं, प्रोफ़ेसर मसऊद का पास है, जो मेरे दोस्त हैं। जिनके घर मैं आज ही मेहमान आया हूं।"

उस व्यक्ति ने चौंककर कहा, "अच्छा तो वह आपका बिस्तर वग़ैरा रखा हुआ है मेरे घर में ?"

मैंने कहा, "आपके घर में या प्रोफ़ेसर मसऊद के घर में।"

उसने ताली बजाकर कहा, "अरे यार, तुम उस मसऊद के तो मेहमान नहीं हो, जो कालेज में पढ़ाता है ?"

मैंने कहा, "जी हां, वही मसऊद !"

उसने कहा, "तो यह कहो ना ! वे तो मेरे मकान के सामनेवाली कोठी में रहते हैं। मैं भी कहूं कि प्रोफ़ेसर और कौन हो सकता है ?"

और उसी समय चौधरी साहब ने चाय का एक गिलास उन प्रोफ़ेसर मसऊद को और दूसरा मुझे थमा दिया और मैं उनसे यह न कह सका, "चाय तो यह है लेकिन गिलास में ?" हां, प्रोफ़ेसर साहब कह रहे थे :

"लस्सी नहीं मिल सकती ?"

हाजी लक़-लक़

लाहौर के विभिन्न दैनिक पत्रों में हास्य-कालम लिखते-लिखते पूरा जीवन व्यतीत कर देनेवाले हाजी लक़-लक़ का न तो कहीं कोई चित्र है न जीवनी ! असल नाम भी शायद घरवालों ही को मालूम होगा ।

ग़ालिब और गोयटे

मुझको सुनाया कामरेड 'बारी'[1] ने और उन्होंने सुना अपने मित्र मिर्ज़ा 'काज़िम' से और मिर्ज़ा 'काज़िम' ने सुनाई आपबीती, और अब आप सुनिए मुझसे 'मिर्ज़ा-बीती' मेरे शब्दों में। और इसका पुण्य पहुंचाइए 'ग़ालिब' और 'गोयटे' की आत्माओं को और प्रार्थना कीजिए मेरे लिए—पुण्य जिसे भी पहुंचे; अपनी बला से !

मिर्ज़ा 'काज़िम' जिन दिनों बर्लिन में थे, उन दिनों का ज़िक्र है कि मिर्ज़ा साहब की मुलाक़ात एक पंजाबी सिख प्रीतमसिंह से हुई। और दोनों एक ही रेस्तोरां में तीन-चार दिन तक एक-दूसरे से मिलते रहे। एक दिन सरदारजी ने मिर्ज़ा साहब से कहा, "भाई साहब ! बात यह है कि मैं इटली जाना चाहता हूं। और मेरे पास पैसा नहीं है। इटली में मेरा भविष्य बहुत उज्ज्वल हो सकता है ; इसलिए अगर आप कुछ रुपया मुझे क़र्ज़ दिलवा दें तो मैं यह क़र्ज़ बहुत जल्द चुका दूंगा।"

मिर्ज़ा 'काज़िम' ने एक क्षण सोचने के बाद कहा, "क़र्ज़ ! सरदार साहब, यहां परदेस में कौन ऐसा हिन्दोस्तानी हो सकता है, जो अपने अल्ले-तल्लों के अलावा किसी दोस्त को क़र्ज़ दे सके !"

सरदारजी—मुझे कुछ ज़्यादा रुपया नहीं चाहिए। सिर्फ़...

मिर्ज़ा साहब—(बात काटकर) अजी, कम-ज़्यादा का तो सवाल ही पैदा नहीं होता, बात यह है कि किसीसे कुछ मांगना ही बेकार बात है।

सरदाजी—(निराश होकर) तो फिर क्या किया जाए ?

मिर्ज़ा साहब—क्या किया जाए ? बहुत कुछ हो सकता है।

---

१. उर्दू के पहले साहित्यकार जिन्होंने मार्क्स-दर्शन की पृष्ठभूमि में आलोचनात्मक लेख लिखे। कम्यूनिज़्म-सम्बन्धी पुस्तकों का लेखन तथा अनुवाद किया।

सरदारजी—(आश्वस्त होकर) वह क्या ? वह क्या ?

मिर्ज़ा साहब—वह यह कि हिन्दोस्तानियों की बजाय जर्मनों से रुपया हासिल किया जाए। जो बहुत आसान काम है।

सरदारजी—वह कैसे ?

मिर्ज़ा साहब—मैं कल बताऊंगा। आप कल इसी वक्त यहां तशरीफ़ ले आइए।

सरदारजी की आंखें ये शब्द सुनकर चमक उठीं और वे मिर्ज़ाजी को पेशगी 'धन्यवाद' कहकर विदा हुए।

रात-भर सरदारजी को नींद न आई। और दूसरे दिन समय से आध घंटा पहले ही रेस्तोरां में पहुंच गए और बड़ी बेचैनी से मिर्ज़ा 'काज़िम' का इन्तज़ार करने लगे। आखिर मिर्ज़ा आए और काफ़ी की प्याली पीते हुए यों बोले।

मिर्ज़ा साहब—देखिए सरदारजी ! मिर्ज़ा 'ग़ालिब' हिन्दोस्तान के बहुत बड़े शायर थे। आप जानते ही होंगे ?

सरदारजी—वही न जिन्हें इंडियन शेक्सपियर कहते हैं ?

मिर्ज़ा साहब—(मुस्कराते हुए) नहीं, नहीं, इंडियन शेक्सपियर तो 'आग़ा हश्र काश्मीरी' थे, जो ड्रामे लिखा करते थे। 'ग़ालिब' उनसे पहले मुग़लिया ज़माने में हुए थे। आपका नाम असदुल्लाखां था और वतन दिल्ली। आप फ़ारसी और उर्दू दोनों ज़बानों के बहुत बड़े शायर थे, लेकिन पैसे की कमी की वजह से ज़िन्दगी बुरी तरह गुज़री। आपको शराबनोशी का बहुत शौक़ था; इसलिए हालत कभी नहीं सुधरी।

सरदारजी—बिलकुल मेरे चचा हरनामसिंह की तरह, जो ज़लदार था। दो सौ बीघा ज़मीन थी। ज़िले-भर में इज़्ज़त और नाम था लेकिन शराब ने बेड़ा ग़र्क़ कर दिया। आज उसे कोई दस रुपये भी उधार नहीं देता।

मिर्ज़ा साहब—हां, हां, बस 'ग़ालिब' की भी यही हालत थी। लेकिन था बड़ा शर्मदार। मर गया लेकिन किसीके सामने सिर नहीं झुकाया। उसकी एक खूबी यह थी कि…"

यों तो सरदारजी सिर हिलाते जाते थे, लेकिन मन में सोचते भी जाते थे कि बात तो जर्मनों से रुपया हासिल करने की थी, ये मिर्ज़ा

साहब 'ग़ालिब' की कथा क्यों छेड़ बैठे ? आप कुछ कहना ही चाहते थे कि मिर्ज़ा 'काज़िम' ने उनके मन की बात भांपकर हाथ से इशारा किया, जिसका मतलब यह था कि चुपचाप सुनते जाइए।

मिर्ज़ा साहब—'ग़ालिब' एक फ़िलासफ़र शायर थे और वे उसी ज़माने में हुए थे जिसमें जर्मनी के फ़िलासफ़र शायर 'गोयटे' हुए थे। गोयटे भी…"

मिर्ज़ा साहब यहीं तक कह पाए थे कि सरदारजी से सब्र न हो सका और उन्होंने बात काटकर अपनी बात शुरू कर दी।

सरदारजी—लेकिन मिर्ज़ा साहब, जहन्नुम में जाएं 'ग़ालिब' और 'गोयटे'! आपने तो वायदा किया था कि आप जर्मनों से रुपया हासिल करने की तरकीब बताएंगे।

मिर्ज़ा साहब—बिलकुल ठीक ! और मैं वही तरकीब बता रहा हूं। आप ज़रा सुनते जाइए। आप हिन्दोस्तान के बहुत बड़े मुवर्रिख (इतिहासकार), शायर और अदीब (साहित्यकार) हैं।

सरदारजी—मैं और शायर ?

मिर्ज़ा साहब—बस, आप चुप रहिए, और मेरी बात सुनिए। आप इतवार के दिन 'होमबर्ग हाल' में एक तकरीर करेंगे, जिसमें आप 'ग़ालिब' और 'गोयटे' की शायरी का मुकाबला करेंगे।

सरदारजी—यह क्या कह रहे हैं आप ? मैं तो जर्मन ज़बान का एक अक्षर भी नहीं जानता और न ही 'ग़ालिब' और 'गोयटे' की शायरी के बारे में कुछ जानता हूं।

मिर्ज़ा साहब—आप हिन्दोस्तानी ज़बान में, और अगर यह भी न हो सके तो पंजाबी ज़बान में तकरीर कीजिए। बात सिर्फ़ यह है कि बोलते जाइए। 'ग़ालिब' और 'गोयटे' की शायरी के बारे में आप कुछ नहीं जानते, लेकिन उनके नाम तो ज़्यादा मुश्किल नहीं है। ज़रा कहिए तो !

सरदारजी—'ग़ालिब'; 'गोयटे'…'ग़ालिब'; गोयटे'।…

मिर्ज़ा साहब—बिलकुल ठीक ! आप पास हो गए। सिर्फ़ इतनी बात है कि 'ग़ालिब' अंड 'गोयटे' कहिए। अंग्रेज़ी ज़बान में हम जिसे 'एण्ड' कहते हैं, जर्मन में उसे 'अंड' कहा जाता है।

सरदारजी—'ग़ालिब' अंड 'गोयटे'…'गालिब' अंड 'गोयटे'।…

मिर्ज़ा साहब—वाह-वाह ! हूं ! अब आप हिन्दोस्तान के बहुत बड़े स्कॉलर हैं। कल बर्लिन के अखबारों में ऐलान छपेगा कि हिन्दोस्तान के मशहूर स्कॉलर सरदार प्रीतमसिंह इतवार की शाम को 'होमबर्ग हाल' में 'ग़ालिब' और 'गोयटे' के मौज़ूअ़ (विषय) पर एक ज़बरदस्त तक़रीर करेंगे। दाखिला टिकट से होगा वग़ैरा।

सरदारजी—लेकिन मैं तकरीर में कहूंगा क्या ?

मिर्ज़ा साहब—जो जी में आए कहते जाइए। बस, बोलते जाइए और हर तीन जुम्लों (वाक्यों) के बाद " 'ग़ालिब' अंड 'गोयटे' " कहते रहिए।

इतवार की शाम आ पहुंची। 'होमबर्ग हाल' जर्मन श्रोताओं से खचाखच भर गया। सभापति की कुर्सी पर बर्लिन के एक प्रसिद्ध तथा विशेषज्ञ साहित्यकार विराजमान थे। उनके एक ओर सरदार प्रीतमसिंह और दूसरी ओर मिर्ज़ा 'काज़िम' बैठे थे। तकरीर का समय आ गया और सरदारजी तकरीर करने को उठे। सभापति ने उपस्थित सज्जनों से प्रोफ़ेसर प्रीतमसिंह का परिचय कराया। जिसपर पूरा हॉल अभिनन्दन की तालियों से गूंज उठा।

सरदार साहब ने अपनी तक़रीर शुरू की :

"भाइयो ! मिर्ज़ा असदुल्लाखां 'ग़ालिब' दिल्ली के रहनेवाले थे। उर्दू और फ़ारसी दोनों ज़बानों के शायर थे। शराब बहुत ज़्यादा पीते थे। इसलिए ज़िन्दगी-भर उनकी बुरी हालत रही। दिल्ली हिन्दोस्तान की राजधानी है। वहां एक कुतुब साहब की लाठ भी है और चांदनी-चौक में सौदा बेचनेवालों की आवाज़ें बड़ी प्यारी लगती हैं—हर तरफ से आवाज़ें आती हैं—'ग़ालिब' अंड 'गोयटे'।"

लोगों ने तालियां बजा-बजाकर आसमान सिर पर उठा लिया और जब तालियों की गूंज समाप्त हुई तो सरदारजी ने तक़रीर को जारी रखते हुए कहा :

"दिल्ली से तीन सौ मील के फासले पर लाहौर है। मैं ज़िला लाहौर का रहनेवाला हूं। हमारा इलाका बड़ा उपजाऊ है।[1] पिछले साल बारिशें कम हुई थीं, इसलिए फ़सलें अच्छी न हुईं। इस साल गुरु

१. यह लेख भारत-विभाजन से पहले का है।

महाराज की कृपा है, नहर में भी पानी खूब रहा और वारिशें भी अच्छी हो गई। उम्मीद है कि गेहूं की फ़सल अच्छी रहेगी। लाहौर की बहुत-सी चीज़ देखने लायक़ हैं। मसलन बादशाही मसजिद, महाराजा रणजीत-सिंह की समाधि, चिड़ियाघर, अजायबघर—'ग़ालिब' अंड 'गोयटे'!"

हाल फिर तालियों से गूंज उठा और सभापति के होंठों पर मुस्कराहट नृत्य करने लगी। आपने मेज़ पर मुक्का मारकर तक़रीर करनेवाले के अद्वितीय भाषण की प्रशंसा की। सरदारजी ने यह प्रोत्साहन देखा तो और भी ऊंची आवाज़ से तक़रीर करने लगे। फर्माया:

"'ग़ालिब' अंड 'गोयटे' की बदक़िस्मती थी कि उन्होंने श्री दरबार साहब अमृतसर के दर्शन नहीं किए। यहां तक कि वे ज़िला गुरदासपुर भी न जा सके; वरना वहां का गुड़ खाकर उन्हें नानी याद आ जाती। ज़िला अमृतसर में एक गांव है—'चम्पादी'। वहां के ख़रबूज़े बहुत मशहूर हैं। 'क़ुसूर'[1] की मेथी बहुत खुशबुदार होती है। 'ग़ालिब' अंड 'गोयटे' के क्या ही कहने! जैसे 'इण्डिया' अंड 'जर्मनी'!"

इस बार सरदारजी ने उस्ताद के बताए हुए 'नियमों'—"'ग़ालिब' अंड 'गोयटे'" पर इण्डिया-जर्मनी की वृद्धि करके कमाल कर दिखाया और इन शब्दों ने सोने पर सुहागे का काम किया। हाल एक बार फिर तालियों से गूंज उठा। सरदारजी ने तक़रीर जारी रखी और दो-तीन जुम्ला के बाद फर्माया:

"भाइयो! अब 'ग़ालिब' के कुछ शे'र भी सुनिए…"

इसी समय मिर्ज़ा 'काज़िम' ने उठकर हाल में बैठे लोगों से कहा कि प्रोफ़ेसर प्रीतमसिंह अब 'ग़ालिब' के कुछ शे'र सुनाएंगे। सरदारजी ने अपनी विशेष भाषा या बोली में गाना शुरू कर दिया:

"असां नित दे…
नीं असां नित दे शराबी रहना—हरनामकौरे!
अध विच कंध कर लै!"[2]

मिर्ज़ा 'काज़िम' कुर्सी पर से उछल पड़े। तिसपर लोगों ने इस ज़ोर

१. एक क़स्बा (जो पाकिस्तान में है)

२. "ऐ हरनामकौर! हम तो प्रतिदिन शराब पीएंगे (और तुम्हें तंग करेंगे), इसलिए तुम (आंगन के) आधे भाग में दीवार खड़ी कर लो।"

से तालियां बजाईं कि मालूम होता था, इससे पहले कभी नहीं बजाईं। ऐसा लगता था कि सबने 'ग़ालिब' के शे'रों को बहुत पसंद किया है। सरदारजी फिर बोले :

"असीं मर गए...
नीं असीं मर गए कमाइयां करदे—हरनामकौरे !
अजे तेरे बंद न बने !"[1]

इस बार भी नियमानुसार काफ़ी प्रशंसा हुई। लेकिन प्रशंसा की हद तो उस समय हुई जब सरदारजी ने 'ग़ालिब' की वह गज़ल सुनाई जिसकी टीप की पंक्ति थी :

"मोड़ीं बाबा डांग वालया—छई !"[2]

लगभग डेढ़ घंटे बाद प्रसिद्ध इतिहासकार तथा साहित्यकार सरदार प्रीतमसिंह की तक़रीर समाप्त हुई। इसके बाद मिर्ज़ा 'काज़िम' उठे और उन्होंने बड़ी शुद्ध जर्मन भाषा में बताया, "प्रोफ़ेसर प्रीतमसिंह ने जिस योग्यतापूर्वक 'ग़ालिब' और 'गोयटे' की आलोचनात्मक तुलना की है; किसी अन्य व्यक्ति ने शायद ही कभी की हो। और मुझे गौरव है कि मेरे देश ने प्रोफ़ेसर साहब जैसे महान व्यक्ति पैदा किए हैं। मैं इनकी पूरी तक़रीर का अनुवाद करके बर्लिन के पत्र-पत्रिकाओं में छपवाऊंगा। और आप देखेंगे कि मेरे देश के इस महापुरुष ने ज्ञान तथा विद्वता के क्या-क्या स्रोत बहाए हैं। मैं आप सबको धन्यवाद देता हूं कि आपने प्रोफ़ेसर साहब के विचार सुनने का कष्ट किया। इत्यादि।"

इसके बाद सभापति महोदय उठे और उन्होंने प्रोफ़ेसर साहब और मिर्ज़ा 'काज़िम' का अपनी तथा उपस्थित सज्जनों की ओर से धन्यवाद किया और सभा समाप्त हो गई। अब बड़े-बड़े लेखक, कवि, पत्रकार और धनपति सरदारजी से हाथ मिलाने को लपके और आपको बड़ी मुश्किल से हॉल के दरवाज़े तक ले जाया गया।

उसी रात मिर्ज़ा 'काज़िम' प्रोफ़ेसर प्रीतमसिंह को गाड़ी पर सवार कराने के लिए स्टेशन ले गए। दोनों की जेबें नोटों से भरी हुई थीं।

---

१. "ऐ हरनामकौर ! पैसा कमाते-कमाते हमारी जान निकल गई, लेकिन तुम्हारे कंगन न बन पाए।"

२. पंजाब का एक प्रसिद्ध लोकगीत।



कृश्न चन्दर

२६ जनवरी, १९१४ ई० को कृश्न चन्दर का जन्म हुआ। आयु का अधिकांश भाग कश्मीर में गुज़रा। आप कश्मीर की सुन्दरता और निर्धनता से बहुत प्रभावित हुए और सामूहिक रूप से 'सुन्दरता को पा लेने और निर्धनता को खो देने' को ही मानव और मानवता की आधारभूत समस्याएं समझते हैं और प्रायः इन्हींके सम्बन्ध में लिखना पसंद करते हैं।

१९३४ ई० में फ़ारमैन क्रिश्चियन कालेज, लाहौर से अंग्रेज़ी साहित्य में एम० ए० किया। फिर लॉ कालेज से १९३७ ई० में एल-एल० बी० की डिगरी ली; लेकिन वकालत की प्रैक्टिस कभी नहीं की।

१९३५ ई० के अन्त में या १९३६ ई० के आरंभ में उर्दू में लिखना शुरू किया। अब तक लगभग चार दर्जन पुस्तकें लिख चुके हैं; जिनमें कहानी-संग्रह भी हैं, उपन्यास भी, नाटक भी, और हास्य-व्यंग्यात्मक लेख भी। जिनमें से कई एक भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त रूसी, अंग्रेज़ी, चीनी, चैक, पोलिश, हंगेरियन आदि विदेशी भाषाओं में भी अनूदित हो चुकी हैं।

क़लम में तलवार की सी काट और विचारों में लहरों का सा प्रवाह रखनेवाले इस महान कलाकार पर उर्दू साहित्य ही को नहीं, पूरे भारत को यथोचित गौरव है।

लौकी

सब्ज़ियों में मुझे भिण्डी बहुत पसन्द है। न जाने किस मनचले ने इसका नाम भिण्डी रख दिया है, यह तो बहुत बुरा नाम है। मगर अंग्रेज़ी में इसे 'लेडीज़ फिंगर' अर्थात् स्त्री की उंगली कहते हैं। यह तो बहुत ही अच्छा नाम है। यद्यपि हमारे देश की स्त्रियों की उंगलियां भिण्डी से भी कोमल और महीन होती हैं, मगर अंग्रेज स्त्री का ख्याल करते हुए यह नाम बहुत ही उम्दा है। जिन लोगों को अंग्रेज स्त्री की मज़बूत उंगलियों का अनुभव हो चुका है, वे हमेशा भिण्डी को इज्जत की नज़र से देखते हैं। और एशियाई स्त्री और यूरोपीय स्त्री की उंगलियों में कोई अन्तर है तो इसपर अधिक आश्चर्य न होना चाहिए, क्योंकि यह कहावत तो आपने सुनी ही होगी, कि 'पांचों भिण्डियां बराबर नहीं होतीं।'

सब्ज़ियों में मुझे करेले भी पसंद हैं, चाहे वे कड़ाही में पड़े हों, या नीम पर चढ़े हों। यह अलग बात है कि मैंने आज तक किसी करेले को नीम पर चढ़ते नहीं देखा, मगर बुज़ुर्गों से सुना ज़रूर है।

मुझे सरसों का साग भी पसंद है। खेतों के खुले वातावरण में जब कुवारियां सरसों का साग तोड़कर अपनी झोली में भर लेती हैं, तो वह बहुत भला मालूम होता है। यही हाल पालक के साग का है, यही हाल बथुए के साग का है, यही हाल चने के साग का है, यही हाल बिरवे के साग का है। संभव है आपने बिरवे का साग न खाया हो (मैंने भी नहीं खाया), लेकिन यह कहावत तो आपने ज़रूर सुनी होगी कि 'होनहार बिरवा के चिकने-चिकने पात!' बस इसीसे सोच लीजिए कितना उम्दा साग होगा।

और फिर तुरई, जिसे पंजाब में तोरी कहते हैं और अवध में तरोई।

हालांकि किसी समय अवध में इसे तोरी ही कहते थे, मगर आजकल दुश्मनी के कारण नहीं कहते। मगर उस ज़माने में बहुत कहते थे जिस ज़माने का यह गीत है—'कान्हा आई तोरी गली में !'

स्पष्ट है कि सुन्दर ग्वालिन सिर पर तोरी का टोकरा उठाए कान्हा की गली में तोरी बेचने आई,—'कान्हा आई तोरी गली में।' इससे यह भी मालूम होता है कि उस युग में भी तोरी कितनी मनभाती सब्ज़ी होगी, जिसके आते ही कान्हा गली में खड़े हो जाते थे। आजकल तो स्त्रियां तोरी या तुरई का नाम सुनते ही घर के दरवाज़े बन्द कर लेती हैं—मगर उस ज़माने में यह बात नहीं थी। इससे यह भय भी स्पष्ट होता है कि हमारे लोकगीतों में हमारे पुरखों की संस्कृति के कैसे-कैसे ख़ज़ाने बन्द हैं, जिनसे उस ज़माने के इतिहास पर रोशनी पड़ती है। वह मशहूर लोकगीत आज भी दुलहिन के विदा करने पर गाया जाता है—'बाबुल मोरा नहर छूटा जाए !' इस गीत से साफ मालूम होता है, कि हिन्दोस्तान में आनेवाले आर्य लोग शहर बाबुल के रहनेवाले थे।

मेरा जी चाहता है कि कभी इस विषय पर एक थीसिस लिखूं, किन्तु समझेगा कौन ? इस देश में पहले ही सब्ज़ियों और अक़्लवालों की कमी है।

फिर सब्ज़ियों में एक सब्ज़ी बैंगन भी है। बैंगन दो तरह का होता है। एक तो झाड़ी का बैंगन होता है, दूसरा थाली का। मगर भुर्ता दोनों का बनता है, और बड़े मज़े का होता है, शर्त यह है कि आप थाली में न हों। मुझे गर्मियों में बैंगन का भुर्ता और चिकन का कुर्ता दोनों बेहद पसन्द हैं, हालांकि चिकन का कुर्ता खाया नहीं जा सकता। किन्तु मुसीबत के समय चबाया तो जा सकता है। और चबाना जो है, वह गोया खाने से पहले की एक मंज़िल है, कुछ अधिक अन्तर नहीं है।

फिर मटर की फली है, लोबिये की फली है, फ्रेंच बीन, जिसे यार लोग फ़ाशबीन कहते हैं, अर्थात् वे तमाम सब्ज़ियां हैं, जो सब्ज़ रंग रखने के कारण सब्ज़ियां कहलाती हैं और फिर वे सब्ज़ियां भी हैं, जो सब्ज़ रंग न रखने पर भी सब्ज़ी कहलाती हैं—जसे कद्दू, चुकन्दर, टमाटर, मूली, शलजम, गाजर, आलू, गोभी और अण्डा। ये सब मुझे पसन्द हैं, सिवाय एक लौकी के।

मैं जब तक अपने माता-पिता के घर में रहा, मैंने लौकी खाई। जब कालेज के होस्टल में आया तब भी मैंने लौकी खाई। आज भी जब मैं एक किरायेदार बनकर मिस सोफ़ी के बोर्डिंग हाउस में रहता हूं, बराबर लौकी खा रहा हूं। जबकि अगर इस दुनिया में किसी सब्ज़ी से घृणा करता हूं तो वह सिर्फ लौकी है। और मेरी मुसीबत यह है कि बचपन से ही मैं जिस चीज़ से घृणा करता चला आया हूं, वही सब्ज़ी मुझे हर रोज़ खाने को मिलती है। यह लौकी का रायता है, यह लौकी-दाल है, यह लौकी-गोश्त है, यह लौकी-टमाटर, यह केवल लौकी, सिर्फ़ लौकी, खाली लौकी, बिलकुल लौकी, खालिस लौकी और लौकी के सिवाय और कुछ नहीं, मगर लौकी। बचपन से जवानी तक और माता के घर से मिस सोफ़ी के बोर्डिंग हाउस तक, लौकी ! लौकी !! लौकी !!! क्या यह किसी आदमी को पागल बना देने के लिए काफ़ी नहीं है ?

और आखिर हर रोज़ यह लौकी ही क्यों खाने को मिलती है, सिर्फ़ इसलिए कि सस्ती है ? सिर्फ़ इसलिए कि फीकी और बेमज़ा है ? इस दुनिया में हर सब्ज़ी का एक मज़ा होता है, उसका अपना एक व्यक्तित्व होता है। करेले खाइए, साफ मालूम होता है आप करेले खा रहे हैं, चुकन्दर नहीं खा रहे हैं। फ्रेंच बीन खाइए, कभी अंग्रेज़ी बीन मालूम न होंगे। अगर फ्रेंच बीन अच्छी तरह से पकाए गए हों तो उनके ज़ायके में हमेशा एक हलकी-सी कड़वाहट बाकी रहती है, जैसे उनका जायका आपपर हंस रहा हो। मगर यह तो हमेशा से फ्रेंच लोगों का स्वभाव रहा है, किसी अंग्रेज़ी बीन से आप इस प्रकार के व्यवहार की आशा नहीं कर सकते। ख़ैर, मैं अधिक देर तक फ्रेंच बीन की तारीफ़ न करूंगा, हो सकता है बहुत-से लोगों को फ्रेंच बीन पसन्द न हो, इसलिए उन लोगों के सामने इसकी तारीफ़ करना गोया भैंसे के आगे फ्रेंच बीन बजाना है।

अभी उस दिन की बात है, मैं अपने दोस्त परवेज़ के साथ मिस सोफ़ी के बोर्डिंग हाउस के लॉन में बैठा हुआ लंच ले रहा था। सर्दी का मौसम था, चमकीला दिन था, धूप साफ़ और खुली थी। ऐसे में जी चाहता था कि अपने सामने लॉन की हरी-हरी घास पर कोई सुन्दर नारी बैठी हो। इतने में सूखी, दुबली सोफ़ी लंच लेकर आई और लंच

में लौकी लेकर आई। और जब वह मेरा लंच मेरे सामने रखकर चली गई तो मैं क्षण-भर सन्न-सा रह गया। आखिर मैंने परवेज़ से कहा, "देखो, इस दुनिया में न्याय नहीं है।"

परवेज़ ने मेरा अभिप्राय गलत समझा था। वह जिस छापेखाने में फ़ोरमैन है, वहां जो कहानियों की पत्रिका छपती है, उसमें मैंने परवेज़ की सिफ़ारिश से एक कहानी भेजी थी, जो कल ही वापस आ गई थी। सम्पादक ने कहानी लौटाते हुए लिखा था, "आपकी कहानी में एक गरीब गड़रिये और उसकी भेड़ों का ज़िक्र है, परन्तु हमारे पाठक ग़रीब गड़रियों में कोई दिलचस्पी नहीं रखते, न उन्हें भेड़ों के मूंडने के तरीकों में कोई दिलचस्पी है। फिर आपकी कहानी में कोई औरत भी नहीं है, केवल भेड़ें ही भेड़ें। अच्छा होगा अगर आप हमें कोई अपनी अमर कहानी भेजें, हम केवल अमर साहित्य छापते हैं।"

परवेज़ ने समझा मैं उस कहानी के लौटाए जाने के बारे में शिकायत कर रहा हूं। वह डबलरोटी के टुकड़े पर लौकी का टुकड़ा रखते हुए बोला, "वह बेचारा सम्पादक सच ही तो कहता है, अगर तुम अपनी कहानी में भेड़ों के बजाय एक स्त्री रख देते तो क्या हर्ज था।..."

"तुम क्या जानो कहानी कैसे लिखी जाती है!" मैंने चिल्लाकर परवेज़ से कहा, "तुम तो एक फ़ोरमैन हो, तुम जिस भावना से लौकी खाते हो, उसी भावना से औरत का ज़िक्र करते हो, उसी भावना से भेड़ का गोश्त खाते हो। तुम्हें क्या मालूम भेड़ और स्त्री में कितना अन्तर है? तुम उस आदमी के दिल की बात क्या जानो, जो लौकी खाना पसन्द न करता हो, लेकिन लौकी खाने पर मजबूर हो। जो सुन्दर नारियों की कहानियां लिखना चाहे, लेकिन लिखे भेड़ों की। अरे क्या तुम देख नहीं सकते इस समय मेरे सामने क्या धरा है!"

परवेज़ बोला, "वही है जो मैं खा रहा हूं, लौकी है, आखिर लौकी में ऐसी क्या बुराई है?" मैंने कहा, "अरे! लौकी खाने से तो यह बेहतर है कि आदमी घास खा ले। देखो इस लॉन की हरी-हरी घास कितनी स्वच्छ है, मेरा जी चाहता है कि मैं एक बकरी होता और इस घास को खा जाता, फिर एक इन्सान होता और इस बकरी को खा जाता, फिर एक कारख़ाना होता और वह मुझे खा जाता...। फिर

मेरी हड्डियां क़ब्र में सड़तीं और उनके जोड़-जोड़ से वही घास फूट-फूटकर उगती और मेरी सारी क़ब्र पर हरी-हरी घास की तरह फैल जाती, जहां फिर कोई बकरी आकर...अरे परवेज़ कितनी सुन्दर कल्पना है मेरी! आजकल मेरे मन में ऐसी ही सुन्दर और अमर कल्पनाएं जागती हैं। अर्थात् लौकी, घास, गोश्त, बकरी, कारखाना, क़ब्र, मत्यु—और जीवन क्या है? मर्द क्यों है? बकरी कहां है? मैं भूखा क्यों हूं? नहीं, नहीं, मैं भूख की बात नहीं करूंगा, मैं केवल स्त्री की बात करूंगा!"

उसने मुझे धैर्य देते हुए कहा, "किसी तरह आज तो तुम लौकी खा लो, कल सोफ़ी की जगह उसकी छोटी बहिन, ट्रीसा आ रही है, उससे नये मीनू की सिफारिश करेंगे, तुम्हारे लिए..."

"और सोफ़ी कहां जा रही है?" मैंने परेशानी के साथ लौकी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा।

"सोफ़ी अपने देश जा रही है, डेढ़ माह के लिए..."

मैंने लौकी खाते हुए कहा, "परवेज़! अगर कल से इस बोर्डिंग हाउस में मुझे लौकी मिली, तो मैं यह बोर्डिंग हाउस ही छोड़ दूंगा, मैं अपनी जान दे दूंगा, आत्महत्या कर लूंगा, मगर..."

मगर दूसरे दिन मुझसे बोर्डिंग हाउस छोड़ा न गया, हालांकि दूसरे रोज सोफ़ी की जगह ट्रीसा आ गई थी और ट्रीसा ने भी लौकी ही तैयार की थी। यद्यपि लौकी वही थी, लेकिन लड़की वही न थी। ट्रीसा बहुत ही सुन्दर थी और जब वह लंच की ट्रे उठाकर मेरे सामने रख रही थी, तो उसकी कंधों तक नंगी बांहें सेब की सुडौल डालियों की तरह झुकी हुई मालूम होती थीं। ट्रीसा एक ऐसे फल देनेवाले पेड़ की तरह सुन्दर थी, जिसपर पहली बार फूल आए हों। मैं तो बस उसे देखता ही रह गया। परवेज़ ने बड़ी ही गम्भीरता से ट्रीसा से कहा, "मेरा दोस्त आज से तुम्हारा बोर्डिंग हाउस छोड़ देगा।"

"क्यों?" ट्रीसा ने घबराकर अपनी आंखों को मेरी तरफ़ घुमाया।

"इसे लौकी पसन्द नहीं है।" परवेज़ नटखट निगाहों से उसे ताकते हुए बोला।

"लौकी पसन्द नहीं है?" ट्रीसा ने मेरी तरफ़ ऐसी निगाहों से देखा, जसे उसे मेरे मनुष्य होने में सन्देह पदा हो गया हो। "लौकी तो

मैं ऐसा उम्दा पकाती हूं, ऐसी उम्दा, कि सब तारीफ़ करते हैं ! आज की लौकी तो मैंने टमाटर के जूस में धीरे-धीरे, मद्धिम-मद्धिम आंच पर पकाई है। खाकर देखिए, बिलकुल गोश्त का सा मज़ा आएगा। क्या सचमुच आपको लौकी पसन्द नहीं है ?" ट्रीसा ने मेरी तरफ़ मेल-मिलाप की दृष्टि से देखा। और मेरा दिल वहीं मोमबत्ती की तरह पिघलने लगा।

"नहीं, नहीं···ऐसी बात नहीं है।" मैंने मुस्कराकर ट्रीसा से कहा, "मुझे तो दरअसल में लौकी उतनी ही भली मालूम होती है, जितनी तुम्हारी जैसी भली औरत !"

ट्रीसा हंसी, "ऊंह ! भला औरत और लौकी में क्या बराबरी है, अब तुम बहुत दूर की बात करने लगे हो मिस्टर !"

"गधा है यह !" परवेज़ ट्रीसा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए मेरा मज़ाक़ उड़ाने लगा।

"नहीं ट्रीसा, स्त्री और लौकी दोनों में बड़ी ही समानता होती है स्त्री की तरह लौकी का सिर भी छोटा होता है और धड़ मोटा होता है। स्त्री की तरह लौकी की त्वचा भी बेहद मुलायम और चिकनी होती है। सुन्दर स्त्री की तरह लौकी का रंग भी खिलता हुआ होता है और जब हवा के झोंके से हरी-हरी बेल पर लौकियां झूमती हैं, तो ऐसा मालूम होता है, जैसे नटखट, चपल लड़कियां चहलक़दमी करने के लिए कहीं जा रही हों।" ट्रीसा ने ख़ुशी से ताली बजाई और मेरे क़रीब मेज़ पर बैठ गई।

परवेज़ का रंग उड़ गया।···

मैंने कहा, "अच्छी लौकी अच्छी औरत की तरह दिल की बड़ी नरम होती है। सुन्दर स्त्री और सुन्दर लौकी दोनों को प्राकृतिक उम्र तक पहुंचने नहीं दिया जाता, पहले ही से तोड़ लिया जाता है। लौकी कोई कद्दू या टमाटर की तरह नहीं है, कि जब तक पकी आयु को न पहुंच जाए, बेकार है। लौकी तो जितनी कम उम्र की होगी, उतनी मज़े की होगी। भला बुड्ढी लौकी भी किसीने खाई है ? बुड्ढी लौकी की रंगत पीली पड़ जाती है, उसकी खाल खुरदरी और झुर्रीदार हो जाती है, अन्दर से गूदा सड़ जाता है और बीज खांसी के बलग़म की

तरह अन्दर ही अन्दर खनकने लगते हैं। उस उम्र में लोग लौकी के बीज निकालकर उसका झांवा बनाते हैं और उससे गंदे बर्तन साफ करवाते हैं—बुड्ढी औरतों की तरह।...''

''लेकिन जवान लौकी की गर्दन, ओट्ट ट्रीसा! बिलकुल तुम्हारी गर्दन की तरह सुराहीदार होती है—और...उसमें ऐसी हलकी-हलकी-सी महक आती है, जैसे जवानी में खूबसूरत औरत के बदन से आती है...जरा मेरे पास आओ...बस, बस...'' ट्रीसा हंसते-हंसते शर्मा गई और तुरन्त वहां से भाग गई।

मगर उस दिन के बाद से डेढ़ महीने तक ट्रीसा ने मुझे लौकी नहीं खिलाई। और अपनी बराबरी में किसी दूसरे की बड़ाई बर्दाश्त नहीं कर सकी, चाहे वह लौकी ही क्यों न हो। और यह मेरे हक़ में बहुत अच्छा हुआ, मैं लौकी खाने से बच गया। आदमी एक समय में एक ही काम कर सकता है, या तो प्रेम करे या लौकी खाए!

डेढ़ महीने के बाद जब साफ़ी वापस आई तो मेरा शादी ट्रीसा से हो चुकी थी, मगर हनीमून के बाद फिर से हमारे घर में लौकी का आना-जाना शुरू हो गया। दो-चार दिन तो मैंने सब्र किया, अन्त में मैंने एक दिन झल्लाकर कहा, ''यह क्या मज़ाक़ है, हर रोज़ वही लौकी! लौकी? क्या लौकी के सिवाय और कोई सब्ज़ी नहीं है इस दुनिया में?''

मेरी आवाज़ सुनकर सोफ़ी और ट्रीसा दोनों रसोईघर से बाहर दौड़ीं। एक के हाथ में चिमटा था, दूसरी के हाथ में बेलन था। दोनों ने एकदम गुस्से से भरे हुए स्वर में कहा, ''क्या है? क्यों शोर मचा रहे हो?'' मैं दोनों बहिनों को इकट्ठा देखकर सहम गया।

अन्त में मैंने चुपके से अपनी नजरें झुका लीं और धीरे से दुखे स्वर में कहा, ''कुछ नहीं, इस प्लेट में थोड़ी-सी लौकी और डाल दो।''



शफ़ीक़ुर्रहमान

९ नवम्बर, १९२० को पैदा होनेवाले और पंजाब से एम० बी० बी० एस०, एडिनबरा से डी० पी०-एच० और इग्लैंड से डी० टी० एण्ड एच० ऐसी डिगरियां लेनेवाले शफ़ीक़ुर्रहमान १९४२ ई० में इण्डियन मैडिकल सर्विस में शामिल हुए और अब पाकिस्तान आर्मी मैडिकल कोर में लैफ्टिनैंट कर्नल हैं और रावलपिंडी में नियत हैं।

पहली पुस्तक १९४२ ई० में छपी थी। तब से कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं; जिनमें 'लहरें', 'परवाज़', 'शिगूफ़े', 'पछतावे', 'हिमाक़तें', 'मद्दोजज़र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेकिन स्वयं शफ़ीक़ुर्रहमान के कथनानुसार—"मेरी जब कोई पुस्तक प्रकाशित होती है तो कुछ दिनों के बाद बुरी लगने लगती है। यही ख़्याल आता है कि यह इससे अच्छी हो सकती थी। अतएव अपने संग्रहों में से मुझे कोई भी पसन्द नहीं।"

उन्हें पसन्द हो या न हो,वास्तविकता यह है कि उनकी हर पुस्तक, हर लेख बल्कि हर पंक्ति हिन्दोस्तान और पाकिस्तान में बड़े चाव से पढ़ी जाती है।

एक बार का ज़िक्र है...

[नोट—इस लेख का कोई पात्र या घटना कल्पित नहीं। यदि कोई व्यक्ति इसमें से किसी चीज़ को स्वयं से सम्बन्धित समझे तो लेखक को हार्दिक प्रसन्नता होगी।]

एक बार का ज़िक्र है कि किसी बाग के हरे-भरे कुंज में कुछ बच्चागाड़ियां एकसाथ आ गईं। हर गाड़ी के साथ नियमानुसार एक-एक आया भी थी। आयाओं ने गाड़ियों को आसपास खड़ा कर दिया और स्वयं बातें करने लगीं। गाड़ियों में नन्हे-नन्हे सुन्दर बच्चे बैठे एक-दूसरे को मटर-मटर देख रहे थे। कभी-कभार एक-दूसरे को हलका-सा इशारा भी कर देते थे और एक-आध 'ग़ाऊं-ग़ाऊं' भी हो जाती थी। बच्चे उम्र में बहुत छोटे थे। एक साल से ऊपर कोई न था।

आयाओं की बातचीत गम्भीर हो गई। कुछ देर बाद गम्भीरतर हो गई और जब और भी गम्भीरतम होने लगी तो हुल्लड़-सा मच गया। एक आया ने सुझाव रखा कि उसे भय है, इस शोरगुल से तंग आकर बच्चे कहीं रोने का शुग़ल न शुरू कर दें; इसलिए उचित यह होगा कि यह सभा दूसरे प्लाट में जुटे। सुझाव स्वीकार हुआ और आयाएं वहां से चली गईं। उनका जाना था कि सब बच्चे मुस्कराने लगे। एक सुनहले बालोंवाला बच्चा दूसरे से बोला, "सुनाइए महानुभाव! क्या हाल है?"

"आप भी कमाल करते हैं!" दूसरा बच्चा कानाफूसी के स्वर में बोला, "ज़रा धीरे बोलिए, किसी आया ने सुन लिया तो शामत आ जाएगी!"

पहला बच्चा—तोबा कीजिए—आया से डरनेवाले ऐ आस्मां नहीं हैं हम! यों भी वे सबकी सब काफी दूर जा चुकी हैं। और फिर

इन बड़ों को हमारी भाषा कहां समझ में आती है ! यही कह देते हैं कि बच्चे 'ग्याओं-म्याओं' कर रहे हैं ।

दूसरा बच्चा—वाक़ई वे काफ़ी दूर जा चुकी हैं । अच्छा अब सुनाइए, कैसे गुज़रती है आजकल ?

पहला बच्चा—बस साहब ! दिन पूरे कर रहे हैं । हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे ! दिल बिलकुल नहीं लगता । बस, यही समझ लीजिए कि…

"सुबह होती है शाम होती है ।
उम्र यूंही तमाम होती है ।।"

दूसरा बच्चा—आप कुछ निराशावादी होते जा रहे हैं । हां, खूब याद आया । आज हमारी सभा में कुछ नये सज्जन भी पधारे हैं । मेरे विचार में पहले परिचय हो जाए, फिर महफ़िल जमेगी ।

पहला बच्चा—इनसे मिलिए, इनका नाम है नन्हे मियां । बड़े सभ्य और सुशील बच्चे हैं । बड़ी सुलझी हुई तबीयत पाई है । इनकी उम्र…मैं भूल गया, आप ख़ुद ही बता दीजिए नन्हे मियां…!

नन्हे मियां—ख़ाकसार की उम्र ग्यारह महीने, ग्यारह दिन और ग्यारह घंटे है, और जनाब की तारीफ़ ?

एक नया बच्चा—सेवक को 'चुन्नू' नाम से पुकारा जाता है । क्षमा कीजिए, मैं इन दोनों महापुरुषों से पहले कभी नहीं मिला ।

पहला बच्चा—ये मुन्ने मियां हैं और साढ़े ग्यारह महीने के हैं—मैं 'किड्डी' हूं । यह अंग्रेज़ी नाम मुझे भी पसन्द नहीं । हमारे पिताजी चूंकि कई साल यूरोप में रह चुके हैं, इसलिए यह नाम जबर्दस्ती मेरे गले मढ़ दिया है । सेवक अगले हफ़्ते एक साल का हो जाएगा ।

एक और बच्चा—और मैं 'राजा' हूं—मैं सात महीने और सात दिन का हूं ।

नन्हे मियां—मुआफ़ कीजिएगा क़िबला !. मुझे यह नाम कुछ नामुनासिब-सा मालूम होता है । पंजाब में 'राजा' नाई को भी कहते हैं और सरकस में चीतों और शेरों का नाम भी राजा होता है । या फिर असली राजा होते हैं, जिनकी रानियां होती हैं । एक बच्चे के लिए यह नाम कुछ ग़ैरशायराना-सा है । मेरे ख़्याल में आपको फ़ौरन अपना

नाम बदलवा लेना चाहिए।

राजा—मुझे खुद इसका एहसास है, लेकिन क्या किया जाए। मजबूरी है। ज़रा बड़ा हो लूं, फिर देख लूंगा।

किट्टी—छोड़िए, ये क्या खुश्क बातें ले बठे आप, मुन्ने मियां, सुना था आपके दुश्मनों को निमोनिया हो गया था…?

मुन्ने मियां—मेरे दुश्मनों को नहीं, मुझको हो गया था। लेकिन वह निमोनिया नहीं, ब्रॉन्को-निमोनिया था। डाक्टर साहब की तशखीस (निदान) ग़लत निकली। अब मैं खुदा के फ़ज़ल और आपकी दुआ से बिलकुल तन्दुरुस्त हूं। यह डाक्टरों की तशखीस हमेशा ही ग़लत निकलती है। और बच्चों के मुआमले में तो ये बिलकुल बेपरवाह बन जाते हैं। न जाने ये लोग मुआयना करते वक्त गुदगुदी क्यों करने लगते हैं। ज्योंही उनका हाथ मेरे पेट पर आता है, मेरे लिए हंसी रोकना मुश्किल हो जाता है।

किट्टी—टोकने की माफ़ी चाहता हूं। बात से बात निकलती है। मुझे भी इन लोगों से एक शिकायत है। दवा के साथ ग़िज़ा बताने में ये लोग इन्साफ़ से काम नहीं लेते। मैंने घर में कई बार यही देखा है कि मरीज़ की ग़िज़ा का दार-ओ-मदार इस बात पर होता है कि खुद डाक्टर साहब ने खाना कब खाया था! अगर डाक्टर साहब अभी-अभी खाना खाकर आए हैं तो कहेंगे—आप बिलकुल हलकी-फुलकी, दुबली-पतली ग़िज़ा खाइए। ज़रा-सा शोरबा और एक छोटा बिस्कुट या बिना दूध और शक्कर की चाय घूंट-भर और बस। अगर ज़्यादा भूख लगे तो थोड़ा-सा पानी पी लीजिए। या मुमकिन है आपको फ़ाक़ा करने का ही हुक्म हो जाए। और अगर वे खुद भूखे हों तो कहेंगे—अब ज़्यादा वहम न कीजिए। जो जी चाहे खाइए। पराठे, कीमा, आलू का भुरता, शामी कबाब, बिरियानी—सब कुछ खा सकते हैं। फल भी खाइए। अगर जी चाहता है तो थोड़ी-सी मिठाई चख लेने में भी कोई हर्ज नहीं।

मुन्ने मियां—भई कुछ भी हो, आपकी खातिर-तवाज़ो तो खब होती है। मैंने कई डाक्टरों को आपकी तारीफ़ करते सुना है कि आप शहर के सबसे खूबसूरत बच्चे हैं।

किट्टी—(शर्माकर) ज़र्रानवाज़ी है। इनायत है आपकी, वरना

बन्दा किस लायक़ है ! लेकिन वह······किसीने बिलकुल सच कहा है कि :

"अच्छी सूरत भी क्या बुरी शै है,
जिसने डाली बुरी नज़र डाली ।"

मुझे बहिन, भाई, अम्मीं, अब्बा, अपने, पराये इस बुरी तरह प्यार करते हैं कि तंग आ जाता हूं । यह हर वक्त का लाड़ मुझे पसन्द नहीं । मुसीबत तो यह है कि हमारे यहां कई लोगों की खूब घनी और ख़ूंख्वार मूंछें हैं । एक-दो बुज़ुर्गों की दाढ़ी भी है···जब वे प्यार करते हैं तो चेहरा छिल जाता है । और फिर अम्मीं तो हर वक्त चूमती रहती हैं । सोते-सोते जगा दिया जाता हूं । इन लोगों को शायद यह भी मालूम नहीं कि चूमना एक ख़तरनाक हरकत है । ये लोग जरासीम (कीटाणु) वग़ैरा की थ्योरी से वाकिफ़ नहीं ।

चुन्नू—कल अंगूठा चूसते-चूसते मैं देर तक सोचता रहा कि ये कमबख्त दांत कब निकलेंगे । इन्तज़ार करते-करते थक गया हूं, दांत निकलते ही सबसे पहले आपा की उंगली में काट खाऊंगा । वे दिन में कई-कई बार मेरा मुंह धोती हैं । दांत निकलते ही मैं पुलाव तो खा सकूंगा—क्यों ?

राजा—मेरे ख्याल में, नहीं ! क्योंकि दांतों का पूरा सैट ज़रा देर में उगेगा । एक-दो दांतों से कुछ नहीं होता ।

किट्टी—अजी पुलाव तो बिलकुल नर्म चीज़ है, आप भुना हुआ मुर्ग़ भी दो दांतों से खा सकेंगे । इन्सान के इरादे में ताक़त होनी चाहिए, हिम्मत करे इन्सान तो क्या नहीं हो सकता ! भई नन्हे मियां ! आप क्यों चुप हैं ?

नन्हे मियां—हज़रत ! क्या अर्ज करूं । एक मुद्दत से यही सोच रहा हूं कि आखिर ये लोग बचपन को सारी उम्र क्यों याद करते हैं । आख़िर क्या निराली चीज़ है इसमें ? ख़ुदा किसीका मुहताज न करे ! अब हमें ही लीजिए, ख़ुद कुछ भी नहीं कर सकते, जिसका जी चाहे, आकर धमका जाए, गुदगुदियां करने लगे, गोद में उठाकर भाग जाए । और गोद लेना भी तो किसीको नहीं आता, उछालते हैं, पटक देते हैं !

किट्टी—लेकिन आपने उनकी अपनी हरकतों पर भी कभी ग़ौर फ़र्माया है, हमें देखकर कैसी-कैसी आवाज़ें निकालते हैं ! किसीने सच

कहा है कि अक़्लमन्द से अक़्लमन्द इन्सान भी तीन मौक़े पर बिलकुल बेवकूफ़ बन जाता है—जब वह अकेले में आईने के सामने हो; दूसरे, प्रेमी के रूप में जब वह अपनी प्रेमिका के पास हो; और तीसरे जब वह किसी बच्चे को खिला रहा हो!...

चुन्नू—कमाल का कथन है आपका! महानुभाव यानी बुज़ुर्ग लोग तो हमारे सामने ऐसी-ऐसी हरकतें करते हैं कि हंसी आती है। कोई महाशय जीभ बाहर निकालकर हिलाएंगे, कोई आंखें मटकाने लगेंगे। मुंह से ऐसे-ऐसे स्वर निकालते हैं कि तानसेन सुन पाए तो मूर्छित हो जाए। कल ही की बात है, घर के एक बुज़ुर्ग मेरे पालने के पास कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। मुझे जो शरारत सूझी तो मैंने रोना शुरू कर दिया। वे उठे, पहले पुचकारा, फिर प्यार किया, पालना हिलाया, गोद में लेकर इधर-उधर भागे, हाई-जम्प और लांग-जम्प करके दिखाई। फिर जो तमाशे शुरू किए हैं, मैं बड़ी मुश्किल से अपनी हंसी रोक सका। सबसे विचित्र उनका नाच था। जा उन्होंने मेरे सामने खड़े होकर नाचा। बिलकुल क्लासिकल चीज़ थी। काश कि तबला साथ होता! मैं देर तक आनन्द लेता रहा, जब वे बिलकुल थक गए, तब दयावश मैं चुप हो गया।

किड्डी—मेरे ख्याल में बच्चे के पास सबसे बड़ा हथियार रोना हैं। जसे एक ख़ूबसूरत औरत की मुस्कराहट के सामने बड़े-बड़े सूरमा हथियार डाल देते हैं, उसी तरह एक बच्चे का रोना भी कयामत ढा सकता है।

मुन्ने मियां—मुआफ़ फ़र्माइए, मैं आपसे मुत्तफ़िक़ नहीं हूं। आपने रोने की थ्योरी को बिलकुल नहीं समझा। अगर समझा है तो उसे बिलकुल महदूद (सीमित) कर दिया है। आपके ख्यालात में वुसअत (विशालता) होनी चाहिए। रोने के बहुत-से फ़ायदे हैं। पहला तो यह कि बड़ों का ध्यान अपनी तरफ़ करने के लिए रोना पड़ता है, बिलकुल उसी तरह जैसे कोई अपने बेयरे को आवाज़ दे या चपरासी को बुलाने के लिए घंटी बजा दे। दूसरा यह कि कभी-कभी बड़ों को सज़ा देनी पड़ती है। जब कभी घर में मेहमान आ जाएं या कोई दिलचस्प बहस चल रही हो या सबके सब कहीं बाहर जा रहे हों; तब ये लोग हमें

बिलकुल नज़रअंदाज़ कर देते हैं, उस वक्त बदला लेने के लिए रोना पड़ता है। और फिर रोने से सेहत अच्छी रहती है। वर्ज़िश भी हो जाती है और आवाज़ खुल जाती है। फेफड़ों के लिए खास तौर पर मुफ़ीद है और…

नन्हे मियां—खूब याद दिलाया, मैं रोना चाहता हूं। हज़रात! अगर में रोना शुरू कर दूं तो आपको बुरा तो नहीं लगेगा ?

किट्टी और मुन्ने मियां—जी नहीं, बड़ी खुशी से रोइए !

नन्हे मियां—शुक्रिया ! बात यह है कि मैं तकिये से कुछ नीचे सरक गया हूं; और खुद उठ नहीं सकता। इसलिए मैं आया को बुलाना चाहता हूं…तो फिर इजाज़त है ?

राजा और चुन्नू—जी हां, बड़ी खुशी से रोइए !

किट्टी—अगर आप चाहें तो मैं भी आपका साथ दे सकता हूं।

नन्हे मियां—ममनून हूं (कृतज्ञ हूं)। मुझे आपसे यही उम्मीद थी, लेकिन अगर हम दोनों रोए तो आया को यह पता न चल सकेगा कि असल में उसे किसने बुलाया है—तो लीजिए, बंदा रोता है।

[आया आती है। और फिर वापस चली जाती है।]

किट्टी—यार ! तुम्हारी आया तो बड़ी खूबसूरत है। मेरी तो आंखें चुंधिया गईं।

नन्हे मियां—आप हुस्नपरस्त मालूम होते हैं !

किट्टी—क़िबला, मेरा मिज़ाज तो बचपन से आशिक़ाना है।

राजा—खूब ! गुफ़्तगू दिलचस्प होती जा रही है, हमें भी तो कुछ बताइए !

किट्टी—"तुम्हें राज-ए-मुहब्बत क्या बताएं,
तुम्हारे खेलने-खाने के दिन हैं।"

मुन्ने मियां—किट्टी साहब ! वह देखिए गाय जा रही है।

चुन्नू और किट्टी—कहां ?

मुन्ने मियां—वह रही, भई मुझे तो भूख महसूस हो रही है।

नन्हे मियां—मेरी भी राल टपक रही है ! क्यों हज़रत, आपको भा गाय का दूध पसंद है ?

मुन्ने मियां—जी हां ! मैं तो गाय के दूध का आशिक़ हूं। किट्टी साहब

आप··· ?

किट्टी—साहब ! मुझे तो भैंस के दूध में पानी मिलाकर पिलाया जाता है।

मुन्ने मियां—लाहौल वला क़ूवत ! भैंस का दूध तो निहायत बोझल चीज़ है। उसमें प्रोटीन की मिक़दार तो उतनी ही होती है लेकिन चर्बी ज़्यादा होती है और यह चर्बी नर्म तबीयत के बच्चों के लिए बड़ी नुक़सानदेह है। कम से कम मैं तो इसे हज़्म नहीं कर सकता। और आप चुन्नू साहब ?

चुन्नू—सेवक को बकरी का दूध पसन्द है।

मुन्ने मियां—मुझे तो यहां दाल में कुछ काला नज़र आता है, कहीं यह महात्मा गांधीवाला मुआमला तो नहीं ?

चुन्नू—कुछ है ही।

राजा—और बंदा ऊंटनी का दूध भी पी चुका है।

नन्हे मियां—हद हो गई ! आपने निहायत ही ग़ैरशायरानाबात की है। काश कि कोई साहब यह मौज़ूअ (विषय) बदल दें !

किट्टी—कल लेटे-लेटे एक शे'र हो गया। अर्ज़ है :

"पंघूड़े में ही उलझाया गया हूं,
खिलौने देके बहलाया गया हूं !"

नन्हे मियां—सुबहान अल्लाह ! क्या बात कही है !

राजा—सुना है कि ब्राज़ील में कपास का भाव एकदम बढ़ गया है और इस वजह से कुस्तुनतुनिया में तरबूज़ सस्ते हो गए हैं। अगर यही हाल रहा तो अरब में खजूरों की खेती पर बहुत बुरा असर पड़ेगा।

[सब बच्चे बुरी तरह राजा को घूरते हैं।]

किट्टी—आज सुबह अंगूठा चूसते-चूसते एक शे'र याद आ गया :

"आज वो बार-बार याद आए,
आज मैं बार-बार रोया हूं !"

राजा—लेकिन तिब्बत में आलूबुखारे दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं और अगर लंका से अरिंड ककड़ियां फ़ौरन न्यूज़ीलैंड न भेज दी गईं तो ईरान में लोहा एकदम सस्ता हो जाएगा और शायद···

चुन्नू—राजा ! तुम यह क्या उलटी-सीधी हांक रहे हो !

राजा—भई, आप लोगों ने ही तो कहा था कि मौज़ूअ़ बदल दो।

नन्हे मियां—लेकिन ये भाव वग़ैरा कौन मसख़रा पूछता है !

राजा—क्या बताएं, हमारे अब्बाजान घर में चौबीस घंटे यही बातें करते रहते हैं, वे बहुत बड़े सौदागर हैं।

किट्टी—यार ! तुम लोगों ने फिर बुज़ुर्गों का ज़िक्र छेड़ दिया। कल की बात है, हमारे मामूजान आए और हमारा झुंझना उठा ले गए। भला ये उनके खेलने के दिन हैं ! आज सुबह-सवेरे भाईजान ने चुपके से हमारी दूध की बोतल खाली कर दी। अपनी तरफ़ से जैसे बहुत बड़ी शरारत की; और मज़े की बात यह है कि ये सबके सब हर रोज़ एहसान जताते हैं, गोया पाल-पोसकर हमपर बड़ा करम फ़र्मा रहे हैं !

राजा—पालना तो ख़ैर हो गया, यह पोसना क्या चीज़ है ? हमें तो अभी तक नहीं पोसा गया।

किट्टी—और ये लोग शायद यह भूल जाते हैं कि कभी ये भी बच्चे थे। बच्चों की बड़ाई भूलनेवालों को हमेशा याद रखना चाहिए कि 'चाइल्ड इज़ दी फ़ादर ऑव मन'।

नन्हे मियां—एक रोज़ अम्मीं मुझे देर तक घूरती रहीं। फिर अपनी सहेली से बोलीं, 'न जाने यह नन्हा हवा में क्या देखता रहता है ! देर तक फ़र्ज़ी चीज़ों को ताकता रहता है, मुझे बड़ी हंसी आई। ये लोग इतना नहीं समझते कि सब बच्चों को क़ुदरती तौर पर 'हाई-प्रमैट्रोपिया, होता है और वे क़रीब की चीज़ें साफ़ नहीं देख सकते।

मुन्ने मियां—हमारे अब्बाजान की मोटर ऐसी अजीबो-ग़रीब चीज़ है कि बस डिबिया में बंद रखने के क़ाबिल है। मैं उसकी ख़ूबियों का पूरा बखान नहीं कर सकता। इतनी आहिस्ता चलती है कि मालूम होता है, पैदल चल रही है।

नन्हे मियां—और कल रात मुझे सुलाने के लिए अम्मीं ने आध घंटे तक लोरियां गाईं। भला लोरियों से कौन कमबख़्त सोता है ! कोई फ़िल्मी रिकार्ड सुनातीं तो कोई बात भी थी।

चुन्नू—फ़िल्मी गानों का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। ऐसे-ऐसे बेसिर-पैर के रिकार्ड सुनने में आते हैं कि बड़ी उलझन होती है। न संगीत, न कविता। लोग गद्य गा देते हैं।

नन्हे मियां—मैंने रेडियो पर भी अक्सर संगीत का खून होते देखा है। कई बार गवैये सुबह के वक्त 'दुर्गा' का ख्याल गा देते हैं। जब 'भाम प्लासी' में 'सोरठ' मिलाकर अलापने लगते हैं तो कभी 'भैरवी' मालूम होती है और कभी 'जोगिया', और शुद्ध विलम्बित 'दरबारी' दोपहर को ले बैठते हैं। कभी रात को 'आसावरी' गा देते हैं और 'मुल्तानी काफ़ी'…।

राजा—क्यों साहब, यह मुल्तान की 'काफ़ी', काफ़ी मशहूर है क्या ? वहां काफ़ी का क्या भाव होगा ?

नन्हे मियां—यह पीनेवाली काफ़ी नहीं है। एक गाने का नाम है। आपने फिर भाव का ज़िक्र किया ?

किड्डी—हज़रात ! मौज़ूअ़ तब्दील होना चाहिए। गुफ़्तगू खुश्क होती जा रही है।

चुन्नू—अच्छा, यह बताइए कि आप बड़े होकर क्या करेंगे ?

किड्डी—मैं बच्चों की तालीम और ट्रेनिंग पर अंग्रेज़ी में एक किताब लिखूंगा।

नन्हे मियां—बड़ा नेक ख्याल है। आप यह किताब उर्दू में लिखिए। नाम रखिए 'रहनुमा-ए-तिफ़्लियात' या 'किलीद-ए-तिफ़्लियात'।

मुन्ने मियां—'बाज़ीचा-ए-इत्फ़ाल' नाम कैसा रहेगा ?

किड्डी—ये सब अच्छे नाम हैं। दरअसल इस मौज़ूअ़ पर बहुत कम किताबें लिखी गई हैं। बच्चों की परवरिश भी एक आर्ट है; जिससे लोग नावाक़िफ़ हैं। अजीब-अजीब किताबें लिखते हैं कि मां बच्चे को गोद में लिए बैठी है, बच्चा हुक्का पी रहा है और बाप अंगूठा चूस रहा है।

नन्हे मियां—मैं उस किताब का दीबाचा लिखूंगा। यह किताब बहुत मक़बूल होगी।

राजा—(धीरे से) 'क़द्र उल्लू की उल्लू जानता है। हुमा को चुग़द कब पहचानता है !'

नन्हे मियां—राजा साहब! वल्लाह, आप महफ़िल में बैठने के क़ाबिल नहीं हैं ! लेकिन इसमें आपका क़ुसूर नहीं। यह ऊंटनी के दूध का क़ुसूर है !

किड्डी—हज़रात ! हज़रात ! ! आप तो सचमुच बड़े बन गए।

आपस में बड़ों की तरह लड़ रहे हैं।

राजा—मैं मुआफ़ी चाहता हूं।

नन्हे मियां—मैंने मुआफ़ किया।

चुन्नू—क्यों महाशय, आपने वह पिक्चर देखी थी—'फ़ोर्टी लिटिल मदर्ज़' !

मुन्ने मियां—जी हां, देखा था। उसमें बड़ों का ऐक्टिंग बिलकुल बेकार थी, हां बच्चे का ऐक्टिंग मुझे बहुत पसन्द आई। वह अंगठा बड़े स्टाइल से चूसता था।

किट्टी—ख़ूब याद आया, देर से हमने अंगूठा नहीं चूसा। मुन्ने मियां ! आप अंगूठा चूसिए।

मुन्ने मियां—अजी हज़रत आप चूसिए !

नन्हे मियां—वल्लाह, चुन्नू साहब पहले आप !

चुन्नू—नहीं महाशय, पहले आप !

किट्टी—आप हज़रात तो तकल्लुफ़ करने लगे। अमां चूसिए भी। अच्छा चलिए, आप पहल कीजिए मुन्ने मियां ! …

मुन्ने मियां—बंदापरवर ! यह ख़ाकसार अभी-अभी चूस चुका है, आप शौक़ फ़र्माइए।

किट्टी—आप तो कांटों में घसीटते हैं।

राजा—अच्छा मैं पहले चूसता हूं।

मुन्ने मियां—(गुस्सा दबाते हुए) राजा साहब ! अब मैं आपसे क्या कहूं ! काश कि आप इन्सानी साइकोलॉजी से वाक़िफ़ होते !

राजा—भई, यह आपका गुस्सा बिलकुल बेमौक़ा है। आख़िर कोई न कोई तो पहले करता ही। मैंने कौन-सा गुनाह कर दया। और ये साइकलों के बारे में आप क्या फ़र्मा रहे थे ?

मुन्ने मियां—साइकल नहीं, (ज़ोर से) साइकोलॉजी !

राजा—वह क्या चीज़ होती है ?

मुन्ने मियां—वह हमें ज़िन्दगी की गहराइयों में ले जाती है। अब आपको इतनी जल्दी क्या ख़ाक समझाऊं ! एक मिसाल देता हूं। भला आप यह कैसे साबित करेंगे कि आप बच्चे हैं ?

राजा—मैं बच्चा ही तो हूं। नज़र जो आ रहा हूं।

मुन्ने मियां—नहीं, यूं नहीं। दलील से साबित कीजिए। चलिए, मैं बताता हूं। पहला नुक्ता यह है कि बच्चों के मुंह में दांत नहीं होते, और आपके मुंह में भी दांत नहीं हैं। लेकिन बूढ़ों के मुंह में दांत कहां होते हैं, इसलिए या तो आप बच्चे हैं या बूढ़े हैं। दूसरा नुक्ता लीजिए। आपका गुज़ारा दूध पर है; लेकिन बिल्ली भी दूध पीती है। लिहाज़ा या तो आप बच्चे हैं या बिल्ली हैं। तीसरा नुक्ता यह है कि आपके सिर पर बाल बहुत कम हैं—गंजे आदमियों के सिर पर भी बाल नहीं होते, लिहाज़ा......।

किट्टी—हज़रात! ख़ामोश! वह सामने देखिए......

[सब बच्चे ख़ामोश हो जाते हैं। एक आया गाड़ी लिए आ रही है, जिसमें दस-बारह महीने की एक सुन्दर-सी बच्ची है। दूसरी गाड़ियों के पास गाड़ी छोड़कर आया प्लाट में आयाओं के पास चली जाती है। बच्चे ख़ामोश हैं। बच्ची सबकी तरफ़ देखती है।]

बच्ची—गुड ईवनिंग एवरीबॉडी! शायद मैंने आकर आप लोगों को डिस्टर्ब किया है!

चुन्नू—जी नहीं, बल्कि यह तो हमारा सौभाग्य है!

बच्ची—मैं अपना इंट्रोडक्शन आप कराए देती हूं। मेरा नाम फ़ैटो है और मैं साढ़े ग्यारह महीने की हूं। ये मास्टर किट्टी हमारे पड़ोस में रहते हैं और मुझे जानते हैं।

राजा—फ़ैटो का क्या मतलब हुआ?

नन्हे मियां—(झुंझलाकर) नामों का भी कोई मतलब होता है! (धीरे से) राजा! ख़ुदा के लिए तुम चुप रहो।

फ़ैटो—जी, फ़ैट का मतलब है मोटी, (शर्माकर) सब मुझे मोटी बच्ची समझकर प्यार से फ़ैटो कहते हैं। वैसे मैं आजकल 'स्लिमिंग' कर रही हूं। पहले से दुबली हो गई हूं; लेकिन ये लोग मेरा नाम नहीं बदलते।

मुन्ने मियां—(धीरे से) चुन्नू साहब, ज़रा किट्टी को देखना, कैसा शर्मा रहा है!

नन्हे—(धीरे से) नज़रें तो उठाता ही नहीं, चेहरा अलग लाल-भभूका हो रहा है। क्या तो चटाख़-पटाख़ बोल रहा था, क्या अब बिलकुल सांप सूंघ गया है।

राजा—भई किड्डी, यह मुग्रामला क्या है ?

नन्हे मियां—(धीरे से) राजा, प्लीज़, ज़रा ग्राहिस्ता बोलो—बेहतर यही होगा कि तुम ख़ामोश रहो।

फ़ैटो—ग्राप ग्रब लोगों का एकाएक खामोश हो जाना बड़ा ग्रजीब लग रहा है। सुनाइए मास्टर किड्डी, ग्राप कैसे हैं ?

किड्डी—हाल ग्रच्छा है···!

मुन्ने मियां—(दबी ज़बान से) :

"उनके देखे से जो ग्रा जाती है मुंह पे रौनक़,
वो समझते हैं कि बीमार का हाल ग्रच्छा है।"

राजा—(ज़ोर से गाते हुए) ग्ररे 'ग्राया करो इधर भी मेरी जां कभी-कभी !'

नन्ने मियां—(धीरे से) लानत है यार राजा तुमपर, तमीज़ तो पास से भी नहीं गुज़री ! डूब मरो कही जाकर !

[चुप्पी]

फ़ैटो—ग्रब मुझे यक़ीन होता जा रहा है कि मैंने सचमुच ग्राप लोगों को डिस्टर्ब किया है। मुझे ग्रफ़सोस है।

चुन्नू ग्रौर नन्हे मियां—जी नहीं।

फ़ैटो—तो फिर ग्राप लोग चुप क्यों हैं ?

मुन्ने मियां—जी नहीं, चुप तो नहीं हैं।

[चुप्पी]

[इतने में फ़ैटो की ग्राया ग्राती है ग्रौर उसे ले जाती है। जाते-जाते फ़ैटो मुड़-मुड़कर किड्डी को देखती जाती है ग्रौर सब बच्चे किड्डी पर टूट पड़ते हैं।]

नन्हे मियां—ग्रच्छा तो यह बात है, बड़े काइयां निकले यार किड्डी !

मुन्ने मियां—किड्डी यार, ग्रकेले ही ग्रकेले ! हमें बताया तक नहीं !

चुन्नू—चुनाव की हम भी प्रशंसा करते हैं।

किड्डी—हज़रात ! पहली नज़र में मुहब्बत हो जाने के ग्राप क़ायल हैं या नहीं ?

राजा—हां, मेरे ख्याल में इस तरह काफ़ी वक्त बच जाता है।

नन्हे मियां—भई किड्डी, ऐसी बातों से किसी ग्रार को टरकाना !

साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि :

"यूं छुपाया राज़-ए-दिल हमने कि अफ़शा कर दिया।"

किट्टी—(शर्माकर) आप लोग कैसी बातें करते हैं!

चुन्नू—क्षमा कीजिए भद्र पुरुषो! मैं काफ़ी नीचे सरक गया हूं। यदि आप आज्ञा दें तो मैं ज़रा देर रो लूं।

नन्हे मियां—मुझे खुद भूख लग रही है। ठहरिए, मैं भी आपके साथ रोऊंगा।

मुन्ने मियां—और मुझे भी एक मक्खी देर से सता रही है। इजाज़त किट्टी साहब!

किट्टी—मैं भी चुप रहकर क्या करूंगा। चलिए, शौक़ फ़र्माइए।

मुन्ने मियां—राजा साहब। आप पहल कीजिए।

राजा—नन्हे साहब! मैं इस बार बिल्कुल पहल नहीं करूंगा।

नन्हेमियां—आप तो सचमुचबुरा मान गए। चलिए अब रोइए भी।

[सब रोने लगते हैं। आयाएं आ जाती हैं और महफ़िल बर्खास्त होती है।]

[नोट—अगर कोई साहब संयोगवश इस लेख को ड्रामा समझकर स्टेज करना चाहें तो लेखक से आज्ञा लेने की जरूरत नहीं।]



सत्रादत हसन मण्टो

'मण्टो' ने एक जगह लिखा था, "मेरे जीवन की सबसे बड़ी घटना मेरा जन्म था जो पंजाब के एक अज्ञात गांव समराला में ११ मई, १९१२ को हुआ। दूसरी घटना १९३१ में हुई जब मैंने पंजाब यूनिवर्सिटी से दसवीं की परीक्षा लगातार तीन साल फ़ेल होने के बाद पास की। तीसरी घटना वह थी जब मैंने १९३९ में शादी की, लेकिन यह घटना दुर्घटना नहीं थी और अब तक नहीं है। और भी बहुत-सी घटनाएं हुई; लेकिन उनसे मुझे नहीं दूसरों को कष्ट पहुंचा। उदाहरणस्वरूप मेरा क़लम उठाना एक बहुत बड़ी घटना थी जिससे 'शिष्ट' लेखकों को भी दुःख हुआ और 'शिष्ट' पाठकों को भी।"

ये घटनाएं तो 'मण्टो' के विचार में घटनाएं थीं। वास्तविक दुर्घटना तो १९५६ में घटी जब इस महान कलाकार की अकाल मृत्यु हो गई।

'मण्टो' उर्दू के सबसे निडर और बेबाक लेखक थे। कई रचनाओं पर मुक़दमे चले और सजाएं भी हुईं, लेकिन वे अपनी डगर पर ज्यों के त्यों चलते रहे। जीवन-निर्वाह चूंकि लेखन-मात्र पर था इसलिए उन्होंने बेहिसाब लिखा। कहानियां, ड्रामे, स्केच, लेख, लतीफ़े, फ़िल्मी और रेडियो स्क्रिप्ट। अपनी निर्भयता के कारण 'मण्टो' ने उर्दू भाषा को भी निर्भय बना दिया है। उर्दू भाषा तथा साहित्य हमेशा 'मण्टो' के ऋणी रहेंगे।

बिन बुलाए मेहमान

'ग़ालिब' कहता है :

"मैं बुलाता तो हूं उनको मगर ऐ जज़्बा-ए-दिल,
उन पे बन जाये कुछ ऐसी कि बिन आए न बने।"

यानी अगर उसे बिन बुलाए मेहमान पसंद न होते तो यह शे'र हमें उसके दीवान में कभी न मिलता।

'ग़ालिब' कहता है कि मैं उनको बुलाता तो हूं; लेकिन दिल मेरा यही चाहता है कि कोई ऐसी बात हो जाए कि वे बिन बुलाए चले आएं। और सच तो यह है कि बुलाकर किसीके आ जाने में वह मज़ा कहां है जो बिन बुलाए आ जाने में है। लेकिन समझ में नहीं आता, लोगों को बिन बुलाए मेहमानों से इतना वैर क्यों है ? आप कहेंगे कि 'ग़ालिब' ने तो माशूक़ों के बारे में कहा था कि उनका बिन बुलाए आ जाना आशिक़ों के लिए बहुत बड़ी बात है। आपने ज़बरदस्ती यह शे'र मेहमानों के साथ चिपका दिया। अच्छा साहब योंही सही; लेकिन मनोविज्ञान की रोशनी तो मौजूद है। चलिए उसीमें बिन बुलाए मेहमानों को देख लेते हैं।

यह मनोविज्ञान का ज़माना है। हर चीज़ आजकल इसी तराज़ू में तोली और इसी कसौटी पर परखी जाती है···लेकिन बिन बुलाए मेहमानों का मनोविश्लेषण करने से पहले इस बात का ख्याल रखना बहुत ज़रूरी है कि क्या हर मेहमान को बुलाना ज़रूरी है ? मतलब यह है कि क्या वही आदमी माननीय मेहमान होता है जिसे स्वयं बुलाया जाए—पत्र लिखकर, निमन्त्रण-पत्र भेजकर, तार देकर या टेलीफ़ोन करके। इसका जवाब तर्कशास्त्र के आधार पर यही होगा कि ऐसे बुलाए

हुए मेहमान, ज़रूरी नहीं कि शत-प्रतिशत माननीय सिद्ध हों। इसी तरह हम इस परिणाम पर भी आसानी से पहुंच जाएंगे कि बिन बुलाए मेहमान ज़रूरी नहीं कि शत-प्रतिशत निन्दनीय सिद्ध हों—अब इससे यह सिद्ध हुआ कि हर बिन बुलाए मेहमान पर निन्दनीय का लेबल चिपका देना बहुत बड़ी ज़्यादती है, और यह भी ज़्यादती है कि अगर आप सारी आयु बुलाएं ही नहीं तो क्या आपके यहां कोई आए ही नहीं। आदमी इसी इन्तज़ार में सूखता रहे कि आप कब बुलाते हैं और मान लिया कि मेहरबान होकर आपने एक बार बुला लिया तो उसके बाद आस लगाए बैठे हैं कि देखिए आप फिर कब मेहरबान होकर बुलाते हैं—ना साहब ! बुलाना-बुलाना कोई ज़रूरी नहीं। जब भी किसीका जी चाहे, चला आए—दोस्तों में ऐसी भी क्या दूई !

अरबों की मेहमाननवाज़ी प्रसिद्ध है लेकिन हमने कभी यह नहीं सुना कि उन्होंने स्वयं ऊंट भेजकर मेहमानों को बुलाया हो। वास्तव में वह मेहमाननवाज़ी ही क्या जो बुलाकर किसी आदमी पर लाद दी जाए—हम तो अरबों के बारे में यही सुनते आए हैं कि उनके मेहमान प्रायः बिन बुलाए ही होते थे—दिन को या रात को जिस समय भी आ निकलते, दरवाज़े खुले पाते। हातमताई कभी पैदा न होता अगर वहां मेहमानों को बुलाकर उनका मेज़बान बनने की रीति होती।

अंग्रेज़ों की रोज़ाना ज़िन्दगी भी बड़ी नपी-तुली है—मिनटों और सैकंडों का हिसाब रखा जाता है। बिन बुलाए किसीके यहां जाना उनकी नज़रों में बहुत बड़ी बदतमीज़ी है। यही कारण है कि हातमताई के से ऊंचे क़द का कोई भी व्यक्ति उनके इतिहास में नज़र नहीं आता। लेकिन यहां हातमताई के क़द के लोग पैदा करने का प्रश्न नहीं। हमें तो केवल यह देखना है कि बिन बुलाए मेहमान को सोसाइटी क्यों ऐसी बुरी नज़रों से देखती है और समाज में उसकी हैसियत खुजली-मारे कुत्ते से भी क्यों तुच्छ है ?

'मान न मान मैं तेरा मेहमान'—यह बिलकुल और चीज़ है। लेकिन बिन बुलाया मेहमान कदापि निन्दनीय नहीं होना चाहिए। बल्कि मेज़बानों को उलटा उनका कृतज्ञ होना चाहिए। क्योंकि ये उनमें आत्मविश्वास पैदा करने का साधन बनते हैं और आत्मसम्मान, जसाकि

आप जानते हैं, मनुष्य के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

ज़रा विचार कीजिए—यदि आप किसी बिन बुलाए मेहमान को सहन नहीं कर सकते, जो अधिक से अधिक चार-पांच दिन आपके यहां ठहरकर अपनी राह लेगा, तो आप किसी ऐसी दुर्घटना को कैसे सहन कर पाएंगे जिसकी प्रतिक्रिया वर्षों जारी रहती है—देश की राजनीति में किसी अचानक परिवर्तन को आपका मस्तिष्क कैसे सहन करेगा और आप किस प्रकार इस परिवर्तन के साथ स्वयं को समा पाएंगे—यदि आप बिन बुलाए मेहमान को सहन नहीं कर सकते तो क्षमा कीजिए, यमदूत का क्या करेंगे जो सदा बिन बुलाए आता है!

दुनिया कुछ भी कहे, वास्तविकता यही है कि हर बिन बुलाए मेहमान का आगमन मेज़बान के आत्मसम्मान में वृद्धि करता है। दावत का ऐलान करके और खाने-पीने का सब सामान जमा करके एक, दस या बीस आदमियों को मेहमान बना लेना कोई बड़ी बात नहीं। बड़ी बात तो उस समय होगी जब आपके फ़रिश्तों को भी मालूम न होगा और तीन-चार मित्र एकसाथ या एक के बाद एक आपके घर आ धमकेंगे और आपको बौखलाहट में उनके खाने-पीने और रहने-सहने का प्रबन्ध करना पड़ेगा।

मेज़बान के सलीक़े या कौशल का सही अनुमान घोषणा करके दी हुई दावतों और बुलाकर बनाए हुए मेहमानों की आवभगत से कभी नहीं हो सकता। आपके, आपकी पत्नी के या आपके नौकरों के सुघड़ापे और रख-रखाव का सही अनुमान केवल उसी समय होगा जब आप परीक्षा के लिए तैयार न होंगे।

स्कूल इन्स्पेक्टर जब यह बताकर पाठशालाओं का दौरा करते हैं कि वे अमुक दिन अमुक पाठशाला का निरीक्षण करेंगे, तो उस दिन उस पाठशाला का सबसे गंदा कोना भी साफ़ होता है। सही निरीक्षण तो वास्तव में उसी समय होगा जब इन्स्पेक्टर 'सरप्राइज़ विज़िट' पर आ निकलेगा। इन्सपेक्टर तो केवल अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए निरीक्षण करने आते हैं; लेकिन बिन बुलाए मेहमान मेज़बानों को अपना कर्तव्य पूरा करने का अवसर प्रदान करते हैं। समाज उन्हें धिक्कार भेजता है लेकिन वास्तविकता इसके बिलकुल विपरीत है; इसलिए कि

इनकी मौजदगी समाज के लिए बड़ी हितकर है।

यहां तक कह चुकने के बाद मैं आपको बताना चाहता हूं और बेझिझक बताना चाहता हूं कि मैं बुलाने पर किसीके यहां आज तक नहीं गया। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मेरे प्रायः सभी मेज़बानों को मुझसे शिकायत है कि मैं बिन बुलाए आ धमकता हूं। इसपर भी मैंने अपनी आदत नहीं बदली। इसलिए कि मुझे इसमें कोई बुराई नज़र नहीं आती।

मेरा स्वभाव कवियों का सा है। ठोस घटनाओं और सपाट चीज़ों में मुझे कोई रुचि नहीं। शादी-विवाह, जन्मदिन इत्यादि की दावतें मेरे लिए बिलकुल बेमज़ा हैं। वे खेल और तमाशे भी मेरी नज़र में कोई महत्व नहीं रखते, जिन्हें देखने के लिए आदमी को समय का पाबंद होना पड़े। मुझे उस बिस्तर पर कभी नींद नहीं आ सकी, जो मेरे लिए विशेष रूप से बिछाया गया हो। वह मेहमाननवाज़ी मुझे खलती है, जिसमें पहले की तैयारी की हलकी-सी झलक भी हो।

वे लोग जो मुझे या मेरे स्वभाव के व्यक्तियों को घृणा की नज़र से देखते हैं; उनके बारे में मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ेगा कि उनमें कवित्व नाम-मात्र भी नहीं। उनमें कण-मात्र भी ड्रामे को समझने और उसका आनन्द लेने की योग्यता नहीं। दुर्घटनाओं को सहने की शक्ति तो, क्षमा कीजिए, उनमें सिरे से होती ही नहीं।

ऊंची सोसाइटी की एक महिला थीं, जिनके बारे में ऊंची सोसाइटी में ही यह मशहूर था कि वे बड़ी मेहमाननवाज़ हैं। मतलब यह था कि वे हर हफ़्ते एक पार्टी दिया करती थीं जिसमें शहर के लगभग सभी बड़े लोगों को बुलाया जाता था। मैं उनके यहां जब भी गया, बिन बुलाए गया। वे मुझे बहुत ऊंचे दर्जे का बदतमीज़ समझती थीं और मैं समझता था कि वे बहुत ही ऊंचे दर्जे की महिला हैं, लेकिन उनके दिल का निचला भाग बहुत ही छोटा है। परिणाम यह हुआ कि एक रात वे एक बिन बुलाई चूहिया को देखकर बेहोश हो गईं और यह आघात उन्हें अन्तिम श्वास तक रहा कि उनके घर में, जहां से एक मच्छर निकाल देने पर वे दस हज़ार रुपये हार देने को तैयार थीं, एक चुहिया कैसे निकल आई!

मैं निवेदन कर चुका हूं कि ऐसे लोगों में दुर्घटनाएं सहने की शक्ति नहीं होता। उन महिला के स्थान पर, जिनका ज़िक्र मैंने अभी-अभी किया है, यदि कोई ऐसी स्त्री होती जिसके दिल का निचला भाग भरा-पूरा होता, तो मैं समझता हूं उस रात महफ़िल अस्त-व्यस्त होने की बजाय और जम जाती और ऐसे लतीफ़े होते, जो सबको हमेशा प्रसन्न रखते।

आप विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन आप किसी ऐसे मेज़बान को, जिसे बिन बुलाए मेहमानों से चिढ़ हो, शेक्सपियर के नाटक पढ़ने को दे दीजिए। दूसरे लोग पढ़-पढ़कर सिर धुनेंगे लेकिन उसपर कुछ असर न होगा। ऐसे व्यक्ति किसी भी कलाकृति से आनन्दित नहीं हो सकते क्योंकि उनमें ललितभावों की कमी होती है। यदि वह कमी न होती तो वे उन समस्त सूक्ष्मताओं और मृदुलताओं को समझ सकते जो बिन बुलाए मेहमानों के आगमन के साथ उनके घर में प्रवेश करती हैं।

आपका अपनी पत्नी के साथ बड़ा सख्त झगड़ा हुआ है। वह कहती थी कि मायके जाएगी और अवश्य जाएगी। आप उसके पक्ष में नहीं थे। नौबत यहां तक जा पहुंची थी कि आपने क्रोध में आकर पूरा डिनर-सैट टुकड़े-टुकड़े कर दिया था और आपकी पत्नी अपनी साड़ी की चिंदी-चिंदी करके बैठी रो रही थी कि ठीक उसी समय किसीने दरवाज़ा खटखटाया या ज़ोर से घंटी बजी। आपने उठकर दरवाज़ा खोला और क्या देखा कि मैं अपने बीवी-बच्चों-समेत दरवाज़े पर खड़ा हूं। आप चिल्लाए, "अरे, तुम कहां!" मैंने कहा, "तुम्हारे यहां और कहां!" फिर आपने मेरी बीवी की ओर देखा और चेहरे पर से क्रोध आदि के चिह्न मेटते हुए उसको नमस्ते की—थोड़ी देर ठिठके, फिर ज़ोर से मेरे कंधे पर हाथ मारकर कहा, "चलो भई अन्दर, बाहर सर्दी में क्यों खड़े हो?"

चलिए साहब! हम अन्दर चले गए। मैंने इधर-उधर देखा और पूछा, "भाभी कहां हैं? क्या सो रही हैं?" आपने खट से झूठ बोला, "नहीं, अन्दर हैं, ज़रा तबीयत ख़राब है।" मेरी बीवी एकदम परेशान होकर बोली, "ऐं···तबीयत क्यों ख़राब हो गई?" आपकी पत्नी ने अन्दर कमरे में ये बातें सुनीं तो जल्दी-जल्दी नुची हुई साड़ी की चिंदियां बक्स में डालीं और आंसू पोंछती हुई बाहर निकल आई और झट से मेरी बीवी को अपने गले लगा लिया अ.र कुछ ऐसे सुन्दर ढंग से अपने

बचे हुए आंसू निकाले कि बेचारी मेरी बीवी को भी रोना पड़ा।

रात बहुत देर तक बातें होती रहीं। मैंने टूटे हुए डिनर-सैट के बारे में पूछा तो आपको बड़ी दर्दनाक कहानी गढ़कर सुनानी पड़ी कि लाख मना करने पर भी नौकर ने सारे बरतन एक ट्रे में उठाए और अंधाधुंध मेज़ के साथ टकराकर सबके सब फ़र्श पर गिरा दिए। बेचारे नौकर को आपके साथ-साथ मैं भी कोसता रहा हालांकि मैं साफ़ देख रहा था कि सैट आप ही ने तोड़ा है क्योंकि फ़र्श पर गिरकर प्लेटों के टुकड़े अलमारी तक कैसे पहुंच सकते हैं।

फिर सोते समय आपकी पत्नी ने भूले से अपना बक्स खोल दिया और मेरी बीवी धुनी हुई साड़ी देखकर चिल्लाई, "हाय बहिन! यह क्या?" तो आप की पत्नी को भी एक फ़र्ज़ी कहानी सुनानी पड़ी, "इन मुए चूहों ने नाक में दम कर रखा है! पिछले महीने मेरा साटन का सूट लीर-लीर कर गए और आज यह नई साड़ी······गोलियां डालीं, तोसों पर ज़हर लगाकर रखा, लेकिन इनसे छुटकारा ही नहीं होता!" मेरी बीवी को अच्छी तरह मालूम था कि साड़ी को लीर-लीर करनेवाली स्वयं आप ही हैं क्योंकि चूहे फाड़ते नहीं, नोचते हैं। लेकिन वह बेचारी आपको चूहे भगाने और मारने की कई विधियां बताती रही।

हम आठ दिन आप के यहां रहे—आपको बहुत कष्ट हुआ। इस-लिए कि हम बिन बुलाए मेहमान थे। कई बार हमने आप पति-पत्नी को आपस में हमारे बारे में खुसर-पुसर करते सुना कि ये कमबख्त टलते क्यों नहीं; लेकिन दुख की बात यह है कि आपने उचित समय पर हमारे आगमन के लाभों पर विचार न किया।

मैं ऐसे हज़ारों उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूं।

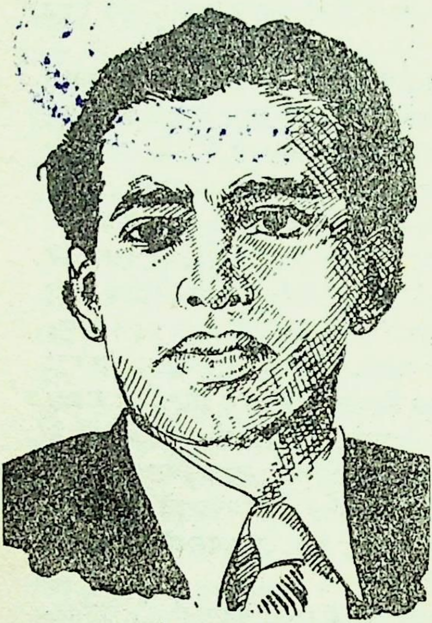
एक सज्जन के यहां हम दस दिन ठहरे। उनकी पत्नी, उनकी दो सालियां, उनके तीन बच्चे—सब बला के चटोरे थे। घर के पास से कोई भी खौंचेवाला गुज़रता, तुरन्त ठहरा लिया जाता था और सैकड़ों रुपये हर महीने यों बर्बाद कर दिए जाते थे। घर के मालिक को सख्त शिकायत थी कि खाना कोई नहीं खाता लेकिन अल्लम-ग़ल्लम चीज़ें दिन-भर खाई जाती हैं···हम केवल दस दिन उनके यहां ठहरे···आप विश्वास कीजिए, चौथे दिन उन सबका चटोरापन ग़ायब हो गया और

वे बाक़ायदा घर का पका हुआ खाना खाने लगे। लेकिन मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि हमारे आगमन के इस हितकर पहलू को नज़र-अन्दाज़ कर दिया गया और हमपर 'बिन बुलाए मेहमान' का लेबल चिपका दिया गया।

बिन बुलाए मेहमानों के बारे में मेरा व्यवहार बहुत ही अच्छा और सही है। जो आता है, बड़े शौक़ से आए। जब जी चाहे आए। एक दिन रहे, दस दिन रहे, दस महीने रहे। मजाल है जो मेरे माथे पर हलका-सा भी बल पड़े। अधिक आ जाएंगे तो मैं उनसे कहूंगा, "देखिए जनाब! हमारे पास दो पलंग हैं, आप इन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयोग में ला सकते हैं। हमारी चिन्ता न कीजिए। सोफ़ा है, इसपर मैं सो जाऊंगा। गद्दा है, इसपर मेरी बीवी आराम से सो सकती है, बच्चे हैं, उनका भी प्रबन्ध हो जाएगा।" वे कहेंगे, "नहीं, नहीं, इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है?" तो मैं कहूंगा, "तो ठीक है आप सोफ़ा और गद्दा संभाल लीजिए, पलंगों पर हम सो जाएंगे। लेकिन देखिए, यह रेडियो मैं अपने कमरे में लिए जाता हूं, इसलिए कि रात को अगर आपमें से कोई इसे बजाए तो संभव है बाक़ियों को बुरा लगे। जिस चीज़ की ज़रूरत हो आप बाहर से स्वयं ला सकते हैं। सिगरेटवाले की दुकान गली की नुक्कड़ पर है। दूध का शौक़ है तो दस क़दम और आगे चले जाइएगा। बड़ा अच्छा हलवाई है।"

जब तक मेरी जेब इजाज़त देगी मैं अपने मेहमानों की ख़ातिर-दारी करता रहूंगा; लेकिन जब वह जवाब दे जाएगी तो मैं उनसे एक दिन अचानक यह कहूंगा, "लीजिए जनाब! आज से तस्वीर का दूसरा पहलू शुरू होगा, हम आपके मेहमान, आप हमारे मेज़बान!"—और अगर मामला बिलकुल बिगड़ता नज़र आएगा तो हम अपने मेहमानों को वहीं घर में छोड़कर किसी दूसरे के यहां बिन बुलाए चले जाएंगे। जो हो सो हो।

आख़िर में उन लोगों से, जिन्हें बिन बुलाए मेहमानों से दुश्मनी की हद तक घृणा है, मेरी प्रार्थना है कि किसी अन्य कारण से नहीं तो केवल मनोरंजनार्थ ही वे महीने में कम से कम एक बार किसी 'बिन बुलाए मेहमान' को अपने यहां ज़रूर बुलवाया करें।



इब्राहीम जलीस

१२ अगस्त, १६२४ ई० को हैदराबाद (दक्खन) में आपका जन्म हुआ। पिता रियासत के एक बड़े सरकारी अफ़सर थे; इसलिए दस भाई होने पर भी उनका विद्यार्थी-जीवन बड़े ठाठ से गुज़रा। १६४२ ई० में अलीगढ़ यूनिवर्सिटी से बी० ए० करने के बाद पत्र-पत्रिकाओं तथा रेडियो के लिए कहानियां, लेख, फ़ीचर आदि लिखने लगे।

राजनीतिक मामले में एक बार जेल गए थे, एक बार चीन। उनके कथनानुसार जेल-यात्रा और चीन-यात्रा उनके जीवन के बड़े महत्त्वपूर्ण अनुभव हैं, "एक से क़ैद और दूसरे से आज़ादी के वास्तविक अर्थों को समझने में बड़ी सहायता मिली है।"

जीवन में बहुत-से काम किए लेकिन टिककर एक भी न कर सके। आजकल एक फ़िल्म-कम्पनी से सम्बन्धित हैं और साहित्य-सेवा के साथ-साथ फ़िल्मी कहानियां भी लिख रहे हैं। अब तक डेढ़ दर्जन से ऊपर पुस्तकें छप चुकी हैं और पाकिस्तान के उंगलियों पर गिने जानेवाले लोकप्रिय साहित्यकारों में आपकी गणना होती है।

लिपस्टिक, टुथपेस्ट, अंगूठा, जूते वग़ैरा

(ड्राइंगरूम गॉसिप)

मुझे विज्ञापन पढ़ने का बहुत शौक़ है। जब कोई नई पत्रिका खरीदता हूं तो पहले उसमें छपे विज्ञापन पढ़ता हूं और बाद में समाचार और लेख। आप यह सुनकर आश्चर्यचकित रह जाएंगे, लेकिन जब आप चकित की बजाय केवल आश्चर्य से मुझसे पूछेंगे कि भई, अजीब उलटे आदमी हो! ऐसा उलटा क्यों चलते हो?...तो इसका सीधा उत्तर मेरे पास यह है कि पूंजीवादी समाज में व्यापारिक विज्ञापनों को जितना महत्त्व प्राप्त है, उतना न जार्ज बर्नार्ड शॉ के नाटकों को प्राप्त है, न 'न्यूयार्क-टाइम्स' के समाचारों को—संसार की तीन-चौथाई से अधिक आबादी जी० बी० शॉ के नाटकों से अधिक हेनरी फ़ोर्ड की मोटरकारों की जानकार है, क्योंकि पूंजीवादी समाज में पुस्तक मोटरकार के मुक़ाबले में बहुत ही तुच्छ वस्तु समझी जाती है। आप किसी बाज़ार में चले जाइए, हावर्ड फ़ास्ट का उपन्यास आपको दस-बारह रुपये में मिलेगा और फ़ोर्ड की कार दस-बारह हज़ार रुपये में। हालांकि पुस्तक मनुष्य को बनाती है और कार मनुष्य को रौंदती है।

बात वास्तव में यह है कि पूंजीवादी समाज में धन अथवा पूंजी ने, कला अथवा मशीन ने मनुष्यता को बुरी तरह कुचल दिया है। यही कारण है कि संसार में डालर अधिक पैदा होते हैं और मनुष्य अधिक मरते हैं। धरती के स्तर पर जितने अधिक बैंक उभरते जा रहे हैं उतनी ही अधिक क़ब्रें धरती में धंसती जा रही हैं।

इस भूमिका के प्रकाश में यह परिणाम आसानी से निकाला जा सकता है कि पूंजीवादी समाज में जीवन व्यापार के लिए है। मनुष्य एक व्यापारी की तरह कुछ वर्षों के लिए इस संसार में आता है। इस हाथ

देता है, उसे हाथ लेता है और फिर लुट-लुटाकर इस संसार से चला जाता है। माना संसार मनुष्य का घर नहीं, मनुष्य का बाज़ार है, और मज़े की बात यह है कि इस बाज़ार में व्यापार भी उतना नहीं होता, जितना विज्ञापन। ऐसा मालूम होता है कि पूंजीवादी जीवन विज्ञापन का दूसरा नाम है। जिस प्रकार इस समाज में मानवता चांदी के सिक्कों के तले दबी हुई है, उसी प्रकार पूंजीवादी व्यापार भी विज्ञापन की ओट में छिपा हुआ है। यदि हम किसी पाठशाला के विद्यार्थी की तरह यहां सारांश लिखने बैठें तो यों लिखेंगे :

"अतएव सिद्ध हुआ कि पूंजीवादी समाज व्यापार है और व्यापार केवल विज्ञापन।"

इस सारांश की व्याख्या यों होगी कि पूंजीवादी व्यापार का अस्तित्व केवल विज्ञापन के अस्तित्व से क़ायम है। यदि पूंजीवादी व्यापार के शरीर से विज्ञापन नोच लिए जाएं तो वह बिलकुल नंगा हो जाएगा—और नंगा भी उस कौए जैसा जो अपने पंखों में हंस के पंख लगाकर राजहंस बन गया था और जब उसके पंख नोच लिए गए तो वह कौआ—बिलकुल कौआ होकर रह गया था। इस संकेत के सिलसिले में यदि मैं पूंजीवादी समाज को कौआ कहूं जो व्यापारिक विज्ञापनों के पंख लगाकर राजहंस बना हुआ है तो इसमें बुरा मानने की क्या बात है? बल्कि आप तो प्रशंसनीय नज़रों से मेरी ओर देखते हुए कहिए कि वाह! भई वाह—तुम तो बड़े बुद्धिमान हो! बड़ी सुन्दर उपमाएं देते हो!

इस कृपादृष्टि पर आपको विवश करते हुए मैं निवेदन करूंगा कि आप मेरी बुद्धिमत्ता के प्रशंसक हों या न हों, कम से कम मैं तो पूंजीवादी व्यापार के विज्ञापन की सुन्दरता का प्रशंसक हूं। पूंजीवादी समाज भीतर से जितना खोखला नज़र आता है; उसकी आत्मा अर्थात् व्यापार की भी यही हालत है। यह भी भीतर से बिलकुल 'ख़ाक' है लेकिन ऊपर से रंगबिरंगे विज्ञापनों में लिपटी हुई नज़रों को धोखा दे रही है। इसे देखकर आप बिलकुल यही महसूस करेंगे, जैसे सैंट मेरी गर्ल्ज़ स्कूल के 'फ़ैंसी-ड्रैस मीना बाज़ार में, आपने आठ आने का एक रंगीन पैकट ख़रीदा। उसकी सुन्दर पैकिंग का एक-एक रंगीन काग़ज़ अलग किया और भीतर से पीतल का केवल एक बटन आपके हाथ लगा।—यहां

वर्णन के लिए मैं इस शिक्षाप्रद वास्तविकता की ओर संकेत कर ही दूं कि पूंजीपतियों का यह संसार भी मानो 'फ़ैंसी-ड्रैस मीना बाज़ार' है, जहां जीवन एक सुन्दर पैकिंग हुआ पैकट है; जिसके भीतर कुछ भी नहीं। और यदि कुछ है तो न होने के बराबर !

नूतन व्यापार के विज्ञापन पढ़-पढ़कर हम बड़ी आसानी से धोखा खाते हैं कि मनुष्य ने पूंजीवाद के युग में कितनी आश्चर्यजनक उन्नति करली है। 'वी० टैक्स' आपको गंजा होने से बचाता है। 'हार्लिक्स' आपको स्थायी यौवन प्रदान करता है। 'विक्स' की गोलियां आपकी खांसी को जड़ से उखाड़ फेंकती हैं। 'यार्डले' की क्रीमें आपके चेहरे पर झुरियां और बुढ़ापा नहीं आने देतीं। पैन्सिलीन के इंजेक्शन आपको कभी मरने नहीं देते।

देखिए लेकिन इन विज्ञापनों के पीछे झांककर आप मानवता को, तो वह गंजी, लंगड़ी, लूली, खांसती, रेंगती, सिसकती दम तोड़ रही है —और विज्ञापनों की इस ओर पशुता मानवता का कृत्रिम भड़कीला लिबास पहने पूंजीपतियों के इस 'फैंसी-ड्रैस मीना बाज़ार' में जीवन का रंगीन पैकट हाथ में लिए खड़ी है, जो भीतर से बिलकुल खाली है...... चलिए, मैं आपकी यह बात मान लेता हूं कि विज्ञापन व्यापार की उन्नति के लिए अति आवश्यक है, लेकिन उत्तर में आपको मेरी यह बात भी माननी पड़ेगी कि आधुनिक विज्ञापन भी आपको केवल ठगता है और सिवाय ठगने के इसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं है। उदाहरणत: अभी-अभी मैंने 'ऑन लुकर मैगज़ीन' में कॉलगेट डैंटल क्रीम का एक विज्ञापन पढ़ा था जो यह था :

"बेचारी मार्गरेट लॉक वुड !

"लोग उसके दांतों की दुर्गंध के कारण उससे दूर भागते थे। लेकिन उसने डाक्टर के मशवरे से कॉलगेट डैंटल क्रीम का प्रयोग करना शुरू कर दिया। अब उसके इर्द-गिर्द उसके मित्रों की भीड़ लगी रहती है।"

लीजिए—पूंजीवादी समाज में डैंटल क्रीम दांत साफ़ करने के लिए नहीं बल्कि अपने गिर्द मित्रों की भीड़ जुटाने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। पौंड्स क्रीम और 'इवनिंग-इन-पैरिस' सैंट चेहरे की

चमक और कपड़ों को सुगंधित करने के लिए नहीं, बल्कि लड़कियों को फांसने के काम आते हैं। 'आई सल्मा क्रीम' लड़कियों को एक चमकीला चेहरा नहीं बल्कि एक 'किस अट्रैक्टिंग फेस' प्रदान करती है। 'पीयर ट्रांस्पेरेंट ग्लेस्रीन सोप' और 'कट्टी क्योरा' के साबुन आपका मुंह नहीं धुलाते, बल्कि आपको 'ईस्थर विलियम्ज़' या 'सुरैया' बनने में सहायता देते हैं। ओकासा की पौष्टिक गोलियां आपको पति-पत्नी के प्राकृतिक सम्बंध बताने की बजाय जी भरकर वासना-पूर्ति का निमंत्रण देती हैं। क्योंकि ओकासा कम्पनी का दावा है कि आप साठ वर्ष में भी चार विवाह कर सकते हैं। 'क्यूटैक्स' के 'सनेट्री नेपकिन' प्रयोग में लाइए, अन्यथा डांस-फ़्लोर पर आपका पार्टनर आपको अकेला छोड़ देगा। 'मैक्स फ़ैकर लिपस्टिक लेबारेटरीज़' का विज्ञापन है कि हमारी लिपस्टिक लगाइए, फिर अपने प्रेमी को एक हज़ार चुम्बन दीजिए, लेकिन होंठों पर ज़रा-सा निशान, कोई 'टेल-टाल' या एक भी 'भेद' नज़र न आएगा। मानो लिपस्टिक होंठों को रंगीन तथा सुन्दर बनाने के लिए नहीं, बल्कि चोर-प्रेम के हज़ारों चुम्बनों को छिपाने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। 'क्यूटैक्स' का 'नेल-पालिश' प्रयोग कीजिए, अन्यथा कोई पुरुष आपकी उंगलियों में विवाह की अंगूठी नहीं पहनाएगा। मिस्टर जो बोनोमो मालिक 'बोनोमो होम-कोर्स ऑनेस्ट कल्चर, ब्राडवे, न्यूयार्क' अमरीकी, लड़कियों को सावधान करता है :

"अपना वक्षस्थल अपनी शारीरिक सुन्दरता के लिए नहीं बल्कि 'ब्राडवे क्लब' के कुछ रंगीले नौजवानों के लिए सुन्दर बनाइए।"[१]

इन विज्ञापनों को ध्यानपूर्वक पढ़िए तो आप अपने मानसिक स्तर के अनुसार शीघ्र या देर में इस परिणाम पर अवश्य पहुंचेंगे कि पूंजीवादी युग के व्यापार ने मनुष्य को जीवन के प्राकृतिक तक़ाज़ों की बजाय कृत्रिमता की राह पर डाल दिया है, जिसका असर यह हुआ है कि जीवन भी कृत्रिम होकर रह गया है। मनुष्य मानो प्राकृतिक तक़ाज़ों को पूरा नहीं कर रहा, बल्कि 'राकफ़ैलरों', ट्रेड कम्पनियों, फ़ैक्टरियों और बैंकों

---

१. 'Beautify your bust because all the gay boys of Broadway Club are after those girls who have appealing, plumpy, developed, thrillingly curved, alluring and high pointed busts.'

के लिए जीवन बिता रहा है। जैसे वह संसार में रहने-सहने के लिए नहीं आया, बल्कि धन एकत्र करने के लिए टहलता-टहलता संसार के स्तर पर कुछ समय के लिए आ गया है। जैसे जीवन में और कोई संघर्ष नहीं, सिवाय इसके कि अपने गिर्द मित्रों और चाहनेवालों का जमघट किया जाए। या जैसे जीवन 'स्टुडिबेकर' गाड़ी ख़रीदने के बाद शुरू होता है और अपनी प्रेमिका की उंगली में विवाह की अंगूठी पहना देने के बाद समाप्त हो जाता है या फिर वही मनुष्य, मनुष्य है जिसकी तिजोरी सिक्कों से भरी है। जिसकी जेब में चैकबुक है। जिसके गैरिज में 'रोल्स-राइस' खड़ी है। जिसके वार्डरोब में 'जैक वैलसर मैन एण्ड कम्पनी' के लिबास भरे हैं। जिसके सिगरेट-केस में 'ब्लैक एण्ड व्हाइट' के सिगरेट हैं। जिसकी बोतलों में 'शैम्पियन' और 'वरमाउथ' भरी हुई है। जिसके ड्रेसिंग-टेबल पर 'वैस्ट मूर' कम्पनी का मेक-अप का सारा सामान रखा है। जिसके बैड-रूम में प्रतिदिन एक नई लड़की एक रात के लिए अंगूठी पहनती है। जिसके गोदाम में आस्ट्रेलिया की गंदम और हिन्दोस्तान के चावलों की बोरियां भरी हुई हैं। जिसके सर्वेण्ट्स-क्वार्टरों में नीग्रो और इंडियन दास हैं।

पूंजीपतियों के इस बाज़ार में पहुंचकर मनुष्य जीवन की असली मंज़िल से बिलकुल भटक जाता है, क्योंकि पूंजीपतियों ने मनुष्य और उसकी असली मंजिल के बीच बहुत-सी कृत्रिम मंज़िलें खड़ी कर दी हैं, जिससे वह यह समझता है कि मैं घर से निकलकर सैक्रेटेरियट तक पहुंच गया तो मंज़िल तक पहुंच गया। उसे स्टेट बैंक तक जाना है, स्टेट बैंक मंजिल है। उसने साहब के जूते पालिश कर दिए, जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया। बीच बाज़ार में पहुंचकर उसने अपने-आपको धोखा दिया और जीवन समाप्त हो गया।

धोखा, पूंजीवादी व्यापार केवल धोखा है और इसका विज्ञापन, विज्ञापन नहीं, धोखे की टट्टी है—मनुष्य को बेवकूफ़ बनाना बुरज़ुआ समाज का एकमात्र उद्देश्य है।

अब इस सिलसिले में एक घटना सुनिए। १९४२ ई० की बात है। नई दिल्ली के रायसीना पार्क में एक अमेरिकन लेडी ने एक होटल खोला जिसका नाम 'रेन-बो' होटल था। वह होटल बिलकुल नहीं चलता था।

इसका कारण यह था कि दिल्ली, नई दिल्ली बन जाने पर भी आख़िर हिन्दोस्तानियों ही की बस्ती थी, जो 'रेन-बो' से बातें करनेवाले स्काई-स्क्रैपर्स में नहीं रहते बल्कि धरती पर बसते हैं। 'रेन-बो' तक उनकी पहुंच कहां! —एक दिन वह अमेरिकन लेडी मक्खियां मारते-मारते तंग आ गई और एक ब्रिटिश एडवरटिज़मैंट फर्म में गई और अपने होटल की वीरानी के सम्बन्ध में परामर्श किया। उस एडवरटिज़मैंट फर्म ने वायदा किया कि वह एक ही दिन में उस होटल को नई दिल्ली तो क्या पूरी दुनिया में मशहूर कर देगी। अमेरिकन लेडी ने उससे कांट्रैक्ट कर लिया। दूसरे दिन ब्रिटिश फर्म ने उस होटल के पुराने साइनबोर्ड की जगह नया साइनबोर्ड लगाया—'आठ दरवाज़ा होटल'; हालांकि उस होटल के तीन दरवाज़े थे। अब जो आदमी उधर से गुज़रता, बड़े आश्चर्य से अपने साथी से कहता :

"अरे, देखो तो—किस पागल ने यह होटल खोला है! नाम रखा है 'आठ दरवाज़ा होटल', और दरवाज़े हैं केवल तीन! आओ, ज़रा अन्दर चलकर उस पागल को तो देखें।"

लेकिन अन्दर जाकर जब वे उस अमेरिकन लेडी का सुन्दर मुखड़ा और मीठी मुस्कराहट देखते तो वे स्वयं पागल हो जाते। फिर बाहर आकर अपने हर मित्र को पागल होने का मशवरा देते। इसका परिणाम यह हुआ कि आठ दिन के अन्दर-अन्दर वह होटल नई दिल्ली तो क्या पूरे उत्तरी हिन्दोस्तान में प्रसिद्ध हो गया। दिल्ली और अलीगढ़ यूनि-वर्सिटी के सैकड़ों विद्यार्थी पागल होने वहां आते थे। जिनमें आपके इस सेवक को भी पागल होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। हम चार-छः विद्यार्थी हर शुक्रवार की छुट्टी के दिन काफ़ी पैसे लेकर 'आठ दरवाज़े-वाली, उस लेडी के सामने अपने धनाढ्य होने का ख़ूब-ख़ूब प्रदर्शन करते। अब यह दूसरी बात है कि उस होटल का कोई 'नवां दरवाजा' नहीं था।

लगे हाथों एक और मज़ेदार घटना भी सुन लीजिए। मुझे किन्हीं दिनों 'रीडर्स डाइजैस्ट' मैगज़ीन पढ़ने का बड़ा शौक़ था। एक बार मैंने उसके 'क्रिस्मस अंक' में अमेरिका के प्रसिद्ध कहानी-लेखक जार्ज लाटन की एक कहानी पढ़ी, जो बड़ी रोचक थी, लेकिन थी अधूरी। कहानी-लेखक ने कहानी को यों अधूरा छोड़ा था :

"यदि आप मेरी कहानी की हीरोइन के बारे में अधिक जानकारी चाहते हैं तो अमुक उपन्यासकार का अमुक उपन्यास जो, अमुक प्रकाशक ने प्रकाशित किया है, अवश्य पढ़िए।"

मैंने बड़ी उत्सुकता से अमुक प्रकाशक को एक पत्र लिखकर अमुक उपन्यासकार का अमुक उपन्यास मंगवा लिया। लेकिन वह उपन्यास इतना बेहूदा था कि मैंने क्रोध में आकर 'रीडर्स डाइजैस्ट' के सम्पादक द्वारा कहानी-लेखक जार्ज लाटन को लिख दिया कि तुमने अपनी बेहतरीन और अधूरी कहानी के ज़रिये जिस उपन्यास को पढ़ने पर विवश किया था वह बिलकुल बकवास है। तुमने ऐसी बेईमानी क्यों की? लौटती डाक से उत्तर दो।

मेरे इस पत्र का उत्तर शिकागो से यों आया :

" माई डीयर इब्राहीम जलीस !

" तुम्हारी शिकायत अनुचित नहीं। लेकिन वास्तविकता यह है कि उस उपन्यास का प्रकाशक मेरे पास आया था। उसने मुझसे कहा कि उसने उस उपन्यास की साठ हज़ार प्रतियां छापी हैं और छः महीने गुज़रने पर भी एक प्रति नहीं बिकी। यदि आप इसकी बिक्री की कोई विधि मुझे बताएं तो मैं उसके बदले में आपको दस हज़ार डालर दे सकता हूं। मुझे, मेरी पत्नी के प्रसूतिकाल के कारण, पैसों की अत्यन्त आवश्यकता थी, इसलिए मैंने एक इश्तहारी कहानी लिखी और उसे अधूरा इसलिए छोड़ा कि मेरे पाठक भी उस उपन्यास को पढ़ें। अतएव प्रकाशक ने मुझे बताया कि मेरी कहानी की बदौलत एक महीने के अन्दर-अन्दर उसी प्रथम संस्करण की साठ हज़ार प्रतियां—सारी की सारी बिक गई।

" यह साहित्यिकबददियानती तो है, लेकिन ऐ मेरे मित्र ! मेरी प्रशंसा करो कि मैंने विज्ञान के इस विचित्र ढंग को प्रस्तुत करके अमेरिका और इंगलिस्तान की बड़ी-बड़ी एडवरटाइज़िंग एजेंसियों को भौचक्का कर दिया।

" उत्तर की प्रतीक्षा में,

तुम्हारा,
जार्ज लाटन "

पत्र पढ़कर मैं भौचक्का रह गया। जब बड़ी देर बाद मेरा भौचक्कापन समाप्त हुआ तो मैंने न केवल वह वाहियात उपन्यास, बल्कि जार्ज लाटन की भी सारी पुस्तकें बुक-शैल्फ़ से निकालकर खिड़की से बाहर फेंक दीं। साहित्यिक दयानतदारी या बददियानती को तो अलग रखिए, ज़रा मौजूदा व्यापार की इस धोखेबाज़ी को देखिए। चील उड़ती है तो शोर मचाते हैं कि भैंस उड़ रही है। और भैंस डकरा रही हो तो घोषणा करते हैं कि 'कार्मन-आंडा' गा रही है।

आप यहां मुझसे एक प्रश्न ज़रूर करेंगे कि मैं अपने देश को छोड़कर इंगलिस्तान और अमरीका की इश्तिहारबाज़ी की धज्जियां क्यों उड़ा रहा हूं; हालांकि अपने देश बल्कि पूरे महाद्वीप में इश्तिहारबाज़ी की बड़ी बुरी दशा है। यह प्रश्न ज़रूर किया जाना चाहिए था। लेकिन खैर कभी-कभी प्रश्न किए जाने के बिना ही उत्तर देने पड़ते हैं। यह भी आखिर पूंजीवादी समाज की एक शिष्टता है। इसलिए उत्तर यह है कि पहले इंगलिस्तान और अमेरिका का ज़िक्र इसलिए ज़रूरी है कि वे दोनों हमारे माई-बाप हैं। हमारे मालिक हैं। हम तो उनके दास हैं। और सच पूछिए तो अपने देश की इश्तिहारबाज़ी का ज़िक्र अलग से किया जाना ज़रूरी है—जबकि दोनों देश—हिन्दोस्तान और पाकिस्तान स्वयं भी इंगलिस्तान और अमरीका के बाज़ारों की दो शाखाएं हैं।[1] 'ई०नोज़०' का 'क्रुशन साल्ट' अंग्रेज़ और अमेरिकन भी खाते हैं और हिन्दोस्तानी और पाकिस्तानी भी, ताकि आवश्यकतानुसार यह नमक फूट-फूटकर निकले। 'डब्ल्यू०डी०एण्ड एच०ओ०विल्स' के सिगरेट लन्दन और न्यूयार्क के अतिरिक्त दिल्ली और कराची में भी पिए जाते हैं। 'सेवन ओ क्लॉक' ब्लेड्ज़ से 'आर्थर मरे' और 'जार्ज अल्सबर्ग' भी शेव करते हैं और 'क़मरुद्दीन' और 'रामलाल' भी। चूंकि दासता के चमत्कारों ने अनारकली और चांदनीचौक के बाज़ारों को 'वाल-स्ट्रीट' और ब्रांड स्ट्रीट के साथ बड़ी मज़बूती से जोड़ दिया है इसलिए पूंजीवादी व्यापार की विशेष इश्तिहारबाज़ी पाकिस्तान और हिन्दोस्तान पर भी छाई हुई है। हां, यह सही है कि धोखेबाज़ी, झूठ, फरेब आदि में हम अपने मालिकों

१. यह लेख १९५० ई० में लिखा गया था। अब शायद दोनों देशों की परिस्थितियां बदल चुकी हैं।
—सम्पादक

से एक-दो हाथ आगे ही हैं। इसका एक नया प्रमाण देने के लिए मैं यहीं तैयार हूं। हुआ यह था कि कुछ दिन पहले लाहौर में एक हिन्दोस्तानी फ़िल्म दिखाई जा रही थी, जिसका इश्तिहार या विज्ञापन समाचारपत्र में यों छपा :

"मजिस्ट्रेट ने मुलज़िम को फांसी की सज़ा सुनाते हुए पूछा, 'बताओ, तुम्हारी आख़िरी ख़्वाहिश क्या है ?'

"मुलज़िम ने हाथ जोड़कर कहा, 'हुज़ूर ! मैं फांसी के तख़्ते पर चढ़ने से पहले फ़िल्म 'बाज़ार' देखना चाहता हूं।'"

इस विज्ञापन का मुझपर बड़ा प्रभाव हुआ और मैंने केवल इसी विज्ञापन की उकसाहट पर फ़िल्म 'बाज़ार' देखी। लेकिन आधी फ़िल्म देखकर ही उठ आया और उस एडवरटाइज़िंग एजेंसी को एक मशविरे का पत्र लिखा :

"श्रीमानजी !

"मैंने फ़िल्म 'बाज़ार' के बारे में आपका विज्ञापन पढ़ा और फ़िल्म भी देखी। अब फ़िल्म देखने के बाद मैं उस विज्ञापन में कुछ संशोधन करना चाहता हूं। आशा है, कल से आप वह विज्ञापन यों प्रकाशित कराएंगे :

"मजिस्ट्रेट ने मुलज़िम को फांसी की सज़ा सुनाते हुए पूछा, 'बताओ, तुम्हारी आख़िरी ख़्वाहिश क्या है ?'

"मुलज़िम ने हाथ जोड़कर कहा, 'हुज़ूर ! फांसी तो बड़ी कष्ट-दायक सज़ा है। इसकी बजाय आप मुझे फ़िल्म 'बाज़ार' दिखा दीजिए। आपका उद्देश्य भी पूरा हो जाएगा और मैं भी आराम से मर जाऊंगा।'"

प्रत्यक्ष है कि इस पत्र का कोई उत्तर नहीं आया। अलबत्ता मुझे अपने ढाई रुपयों के इस प्रकार ठग लिए जाने का बड़ा दुःख है। यदि मैं फुटपाथ के डाक्टरों के परामर्श के अनुसार ये ढाई रुपये पान खाकर थूक देता या सिगरेट पीकर फूंक देता तो मन को तो तसल्ली रहती कि चलो जी, रुपये ज़ाया नहीं गए।

इस प्रकार की छल-मिश्रित अत्युक्ति और अत्युक्ति-मिश्रित छल से भरी हुई इश्तिहारबाज़ी में अपने पाकिस्तान और हिंदोस्तान के भाई लोगों का न तो अंग्रेज़ मुक़ाबला कर सकते हैं और न अमेरिकन—अपने

प्यारे देश के विज्ञापनों में मुझे सबसे अधिक दिलचस्प विज्ञापन तो केवल दो ही मालूम हुए। एक शादी-ब्याह के विज्ञापन और दूसरे कफ़न-दफ़न के।

दैनिक 'हरा पाकिस्तान' में प्रतिदिन इस प्रकार के विज्ञापन प्रकाशित होते रहते हैं :

" 'एक सुन्दर नवयुवती, जिसकी उम्र अठारह वर्ष है, जो मैट्रिक तक शिक्षा पा चुकी है। घरेलू काम-काज में निपुण है। कशीदाकारी, स्वेटर बुनने और कैरम खेलने में सिद्धहस्त है। सैयदज़ादी है। उसके लिए वर चाहिए। लड़का सुन्दर, जवान और स्वस्थ न हो तो भी कोई हानि नहीं। उसकी मासिक आय कम से कम तीन सौ रुपये होना ज़रूरी है।'

" 'एक शरणार्थी लड़की के लिए वर चाहिए। यह बेचारी दंगे में अग़वा हो गई थी। अब कोई मुसलमान भाई इससे ब्याह करके इस ग़रीब की ज़िन्दगी की डूबती नैया को बचा ले। लड़का शादीशुदा हो तो भी कोई हर्ज नहीं। इस्लाम में तो चार ब्याह किए जा सकते हैं।' "

इन विज्ञापनों को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता होती है कि पूंजीवादी जीवन-व्यवस्था मनुष्य को फिर से मिस्र और बग़दाद की शानदार सभ्यता की ओर वापस लिए जा रही है; जहां बाज़ारों में भीड़ लगाकर नौजवान लड़कियां नीलाम की जाती थीं। वह तरीक़ा कुछ ज़्यादा अच्छा नहीं था, इसलिए पूंजीवादी समाज ने उसी तरीक़े को एक सभ्य रूप प्रदान कर दिया है। अब भी लड़कियां भरे बाज़ार में बेची जाती हैं लेकिन कितने सम्मान के साथ! लड़की को दहेज-समेत बना-संवारकर समाचारपत्र के पन्नों के पीछे छिपा दिया जाता है। जिसको ख़रीदना होता है वह चुपचाप समाचारपत्र के पन्नों के पीछे चला जाता है।

पूंजीवादी समाज में नारी का विज्ञापन ऐसे ही दिया जाता है जैसे नारी, नारी नहीं, 'चियूंग-गम' है, लिपस्टिक है या 'गॉडरेज़' का स्प्रिंगदार पलंग है—बाज़ार में 'गॉडरेज' का पलंग नब्बे रुपये में मिलता है और बदरुद्दीन की लड़की तीन सौ रुपये मासिक में!

हाय नारी! तू कभी 'जान ऑव आर्क' भी थी। तेरा नाम 'ज़ोया' भी था।

दूसरा विज्ञापन—कफ़न-दफ़न का विज्ञापन! फ़िदाअली, नासिरअली

एण्ड सन्ज़ कफ़न-दफ़न के विशेषज्ञों का है,'जो दैनिक पत्रों में इस प्रकार छपता है :

"अगर आपका कोई रिश्तेदार मर गया हो तो हमें '२९९९' पर टेलीफ़ोन कर दीजिए। हम उजरत पर ऐसे उम्दा तरीक़े से आपके रिश्तेदार को कफ़नाएं और दफ़नाएंगे कि मरहूम का आख़िरी सफ़र बहुत ही आरामदेह हो जाएगा—हमारी फ़र्म का दावा है कि आज तक किसी मुर्दे ने हमारे काम और इन्तज़ाम की बुराई नहीं की। अगर मुमकिन होता तो हम बड़े-बड़े नामी-गिरामी मुर्दों से तारीफ़ी सर्टिफ़िकेट भी हासिल कर लेते। लेकिन हम झूठ नहीं कहते; हम बेहतरीन तरीक़े से मुर्दे को नहलाते हैं। बेहतरीन क़ब्रें खोदते हैं; ऐसी क़ब्रें जो सर्दियों में गर्म और गर्मियों में एयरकंडीशंड हो जाती हैं।

"हमारी फ़र्म में मुर्दे के सिरहाने रोने और दोहत्थड़ें मारनेवाले नौकर भी हैं। क़फ़न-दफ़न का पूरा कोर्स सिर्फ़ पचास रुपये में।

"विज्ञापनकर्ता :

"फ़िदाअली, नासिरअली एण्ड सन्ज़, बोनाफ़ाइड कान्फ़ेंस एण्ड ग्रेव-डगर्स, जामामस्जिद के सामने, मैक्लोड रोड, कराची।"

पूंजीवादी व्यापार की इस आश्चर्यजनक उन्नति के ज़माने में हमें इतनी आसानियां प्राप्त हैं कि अगर कोई सगा-सम्बन्धी मर जाए तो हमें केवल अपनी तिजोरी या चैकबुक की तरफ़ देखना पड़ता है। उसकी लाश पर रोने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि 'फ़िदाअली, नासिरअली एण्ड सन्ज़' के पास किराये के रोनेवाले मौजूद हैं और आपकी ओर से आपसे अधिक धाड़ें मार-मारकर रो सकते हैं। क्योंकि रोना आपका पेशा नहीं, उनका पेशा है। मरहूम की क़ब्र पर रोज़ाना फूल चढ़ाने के लिए आपको कष्ट करने की ज़रूरत नहीं। 'फ़िदाअली, नासिरअली' के नौकर हर रोज क़ब्र पर फूल चढ़ा आते हैं और फूलों के दाम और क़ब्र तक आने-जाने के खर्च का बिल रोज़ का रोज़ प्रस्तुत कर देते हैं।

देखिए इस पूंजीवादी युग में मनुष्य ने सचमुच कितनी उन्नति कर ली है! अब एक मनुष्य पर दूसरे मनुष्य का कष्ट या मौत ग़म बनकर कभी नहीं छा सकते। पूंजीवाद दूसरे मनुष्य के कष्ट या मौत के ग़म को आपकी आंख का आंसू नहीं बनने देता। पूंजीवाद ने आपके दिल के मांस

के बेकार लोथड़े की बजाय चांदी और सोने का सख्त और चमकीला दिल बना दिया है; जिसपर जो भी ग़म गिरेगा वह चांदी बनेगा। सोना बनेगा। आंसू नहीं बनेगा। मोहब्बत नहीं बनेगा।

अब ज़रा एक और विज्ञापन देखिए।

राशनिंग विभाग के मुख्य दफ़्तर के आगे एक बोर्ड लगा है, जिसपर एक अनाज के गोदाम का चित्र है जिसके दरवाज़े पर एक तुर्रेबाज़ मोटा जागीरदार खड़ा मूंछों को बल दे रहा है। लेकिन उसकी टांगों के बीच से एक चूहा पुलिस की वर्दी पहने भीतर दाख़िल हो रहा है और नीचे ये पंक्तियां लिखी हैं :

"चोरबाजारियों और ज़खीराबाज़ों का पता लगाना आपका राष्ट्रीय कर्तव्य है।"

इस विज्ञापन के निर्देश का कहां तक पालन होता है, इसका तो ज्ञान नहीं, हम तो केवल यह जानते हैं कि जब कभी किसीने ब्लैक-मार्केटियर या ज़खीराबाज़ का पता लगाया है तो उसे कम से कम राशनिंग अफ़सर और अधिक से अधिक किसी प्रान्त का मुख्यमंत्री बना दिया गया है।

अब ज़रा दो-तीन विज्ञापन और पढ़िए। ये सरकारी विज्ञापन तो नहीं है; लेकिन अर्ध-सरकारी ज़रूर हैं। आपने यह विज्ञापन हर जगह देखा होगा।

"पाकिस्तान को मज़बूत बनाओ।

"कश्मीर के जिहाद के लिए नौजवानों को तैयार करने का एक ही तरीक़ा डालडा वनस्पति घी का इस्तेमाल है।"

यह विज्ञापन न केवल व्यापारिक वरन् राजनीतिक महत्त्व भी रखता है। यह विज्ञापन का विज्ञापन है और सरकार को एक राजनीतिक परामर्श भी है कि सरकार क्यों व्यर्थ में अपने बजट का ६६ प्रतिशत भाग डिफ़ेंस या सुरक्षा पर खर्च करती है। इसके स्थान पर यदि वह डालडा वनस्पति का सारा स्टॉक पाकिस्तान के लिए ख़रीद ले तो पाकिस्तान न केवल कश्मीर पर विजय पा लेगा, बल्कि पूरे भारत पर कब्ज़ा कर लेगा।

दूसरा विज्ञापन कपड़ों के एक बड़े व्यापारी का है; जो यह है :

"क़ायदे-आज़म का फ़र्मान :

इत्तिहाद[1], तनज़ीम[2], और अमल[3]

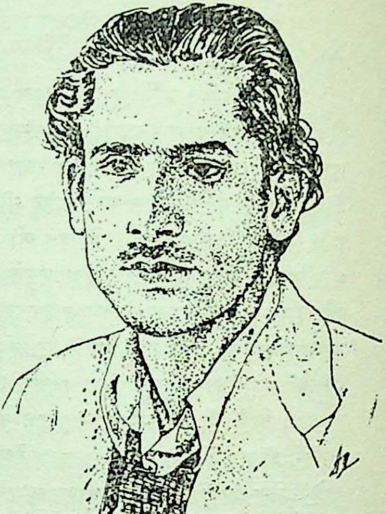
" बेहतरीन वर्स्टेड, ट्वीड और गैबरडीन—हमसे खरीदिए। हम हैं पाकिस्तान में इंग्लिस्तान और अमेरिका के सबसे बड़े स्टॉकिस्ट :

"हाजी हिदायतअली, निज़ामअली एण्ड सन्ज़, क्लॉथ-मर्चेण्ट, बन्दर-रोड, कराची।"

तीसरा और अन्तिम विज्ञापन फ़्लैक्स शूज़ कम्पनी का है। इस विज्ञापन में हिन्दोस्तान और पाकिस्तान का नक़्शा दिखाया गया है और उसपर फ़्लैक्स बूट को इस तरह रखा है कि जूते की एड़ी तो दिल्ली पर है और तला पाकिस्तान पर, और नीचे सिवाय 'फ़्लैक्स फुट वियर' के और कुछ नहीं लिखा है। लिखने की आवश्यकता शायद इसलिए नहीं थी कि यह विज्ञापन देखने और पढ़ने से अधिक समझने और ग़ौर करने की चीज़ है। मैंने इस विज्ञापन पर जहां तक ग़ौर किया है और जितना इसे समझने की कोशिश की है, उतना ही मुझे क्रोध आया है कि भला यह भी कोई बात हुई···! ···फ़्लैक्स शूज़ कम्पनी को यदि हमारे दोनों स्वतन्त्र देशों की स्वतन्त्रता का मज़ाक़ ही उड़ाना था तो इसके और भी तरीक़े हो सकते थे। हमारे स्वतन्त्र देशों ने कब यह कहा था कि वे एंग्लो-अमेरिकन ब्लाक से अलग होना चाहते हैं—मानता हूं कि यह विज्ञापन सच्चाई प्रदर्शित करता है लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं है कि हर सच्चाई का इस प्रकार विज्ञापन किया जाए कि वह सरासर झूठ मालूम हो।

---

१. एकता २. संगठन ३. कार्य



'फ़िक्र' तौंसवी

"पैदा हुआ तो न कोई सितारा आसमान से टूटा और न आकाश से फूल बरसाए गए। ठिगने-से गठीले बाप ने अपनी छोटी-सी दुकान पर तराज़ू में गुड़ तोलकर ग्राहक को देते हुए कहा, "सातवां बच्चा है।"

सातवां बच्चा—वह भी गुड़ तोलनेवाले के यहां, तौंसा नामक अज्ञात गांव में जन्म लेकर अधिक से अधिक क्या कर सकता था ? लेकिन आश्चर्य है कि उसी बच्चे ने बड़े होकर अपने जीवन में बहुत कुछ किया। क्लर्की, शायरी, कहानी-लेखन, सम्पादन, हास्य-व्यंग्य-लेखन इत्यादि। तौंसा से वे मुल्तान गए। मुल्तान से शेख़ूपुरा। शेख़ूपुरा से लाहौर। लाहौर से जालंधर और जालंधर से दिल्ली (जहां उर्दू दैनिक पत्र 'मिलाप' का हास्य-कालम लिखते हैं)। उनके पास कभी अच्छा घर नहीं रहा। अच्छे वस्त्र नहीं रहे। अच्छा खाना नहीं नहा; लेकिन अच्छा दिल हमेशा रहा—दिल जो 'फ़िक्र' तौंसवी के हर लेख में धड़कता है।

मर्दुम-शुमारी[1]

इस बार मर्दुम-शुमारी के कमिश्नर द्वारा बनाए गए नियम ज़्यादा सख़्त हैं। उसने मर्दुम-शुमारी के जो फ़ार्म बंटवाए हैं, उनमें ख़ाने अधिक हैं और बहुत खुले-खुले हैं और साथ ही हिदायत की है कि इन्हें दियानतदारी से भरा जाए।

ख़ानों की अधिक संख्या से संदेह होता है कि इस बार मर्दुम-शुमारी कमिश्नर लोगों को गिनना भी चाहते हैं और तोलना भी। क्योंकि उन्होंने ब्योरा भी मांगा है। उद्देश्य यह है कि मर्दुम-शुमारी के द्वारा आधुनिक देशीय संस्कृति का सच्चा और पूर्ण चित्र सामने आ जाए।

अतएव इस चित्र में मैंने उत्तरों के लिए जो रंग भरे हैं, वे ख़ाना-वार यों हैं :

जन्म-तिथि—कुछ सही नहीं। पिताजी कुछ कहते हैं; माता कुछ कहती हैं और पाठशाला के सर्टिफ़िकेट में कुछ और ही दर्ज है। हैल्थ-सर्विसिज़ की जिस नर्स ने दायागीरी की थी; वह हस्पताल के क्लर्क यानी अपने प्रेमी के साथ भाग गई और १६१८ में जन्म लेनेवाले बच्चों का रजिस्टर (चुराकर) साथ ले गई। पण्डित धरधर धरेन्द्र शास्त्री ने जन्मकुण्डली तो बनाई थी, लेकिन बाद में वह ग़लत सिद्ध हुई; इसलिए किसीको भी मेरी जन्मतिथि पर विश्वास न आया। मेरी जन्मकुण्डली में उन्होंने मेरे धन-दौलत के ख़ाने में शुक्र तारा बिठाया था। जिसका मतलब था कि बच्चा धनाढ्य होगा। लेकिन मुझे जीवन-भर एक अच्छा पैन यानी क़लम भी न मिल सका; बल्कि आयु-भर मुझपर शनि सवार रहा। पण्डित धरधर धरेन्द्र शास्त्री का कहना है कि आपके पिताजी ने मेरे साथ धोखा किया था और पांच रुपये का वायदा करके पांच आने फ़ीस

---

१. जनगणना

दी थी, इसलिए मुझे अधिक देर तक उस खाने में न ठहर सका।

जिस दिन मेरा जन्म हुआ, उसी दिन पिताजी जुआ खेलने के जुर्म में गिरफ़्तार हुए थे। अतएव वही तिथि पुलिस के रजिस्टर में से देखी जा सकती है। लेकिन यह एक अनुचित बात है; क्योंकि इस रजिस्टर से एक कटु स्मृति सम्बन्धित है।

नाम—कुलपण्डित ने धन-राशि निकालकर 'फ़क़ीरा' नाम रखा; लेकिन नानी ने मन्नत मानी थी कि अब के दोहिता या दोहिती हुई तो उसका नाम 'गुलाब' रखूंगी। अतएव 'फ़क़ीरा' और 'गुलाब' दोनों साथ-साथ चलते रहे। फिर अचानक 'गुलाब' शब्द 'गुल्ली' में बदलने लगा और 'फ़क़ीरा' धीरे-धीरे लोप होने लगा—और······विवश हो पाठशाला में 'गुल्लीप्रसाद' लिखवाया गया। बड़ा हुआ तो लोग आदरवश 'गुल्ली बाबू' कहने लगे। घर के बाहर नाम की तख्ती पर जी० बी० भाटिया लिखवा रखा है। कालेज के दिनों में मिस 'चांद' से किंचित् प्रेम हुआ तो मैं कवि बन गया और 'चांद' उपनाम रख लिया और मिलन और बिछोह दोनों विषयों पर कविताएं कहने लगा। उन दिनों लोग मुझे श्री 'चांद' कहकर मेरा सत्कार करते थे। मिस 'चांद' से विवाह कर लिया तो कविता और उपनाम दोनों छूट गए।

मेरी पत्नी मुझे प्यार से 'सुनोजी' कहकर पुकारती है। और यह नाम भी मुझे कुछ गलत मालूम नहीं होता।

पिता का नाम—पिताजी के नाम के बारे में पोज़ीशन यह है कि वे बड़े ग़ुसीले और कड़े स्वभाव के व्यक्ति थे; इसलिए लोग भयवश उन्हें 'लालाजी' कहकर पुकारते थे। एक बार एक पटवारी ने उन्हें असली नाम से पुकारा था तो पटवारी पर उन्हें इतना क्रोध आया कि उन्होंने उसकी मुर्ग़ी को पत्थर मारकर हलाक़ कर दिया। आख़िरी उम्र में बहरे हो गए थे; इसलिए न असली नाम सुन सकते थे न नक़ली।

श्रवणशक्ति के बाद जब दर्शनशक्ति भी खो बैठे तो उन्होंने मृत्यु को उचित समझा। मृत्यु के बाद उनके ऋणदाताओं ने मुक़दमे में उनके असली नाम का रहस्य-प्रकाशन किया। लेकिन अब व्यर्थ था; क्योंकि एक ऋणी पिता का नाम लेते हुए लज्जा आती है।

जाति या गोत्र—भाटिया! सुना है हमारे पूर्वज राजपूत थे और

पांच हजार वर्ष पूर्व राजपूताने से भागकर यहां आ बसे थे। भागने का कारण कोई नहीं बताता। सभी शर्माते हैं। एक परम्परा यह भी है कि हमारी वंशावली भगवान कृष्ण से मिलती है। भगवान कृष्ण मक्खन खाते थे, हम वनस्पति खाते हैं; इसलिए यह परम्परा भी कुछ अनैतिहासिक मालूम होती है। सरकारी काग़ज़ात में भाटिया के साथ ब्रैकट में शब्द (राजपूत) लिखवाया करता हूं। आजकल के ज़माने में शूरवीरता ब्रैकट ही में दिखाई जा सकती है। पिछले ज़माने के राजपूतों की बात और थी।

एक बुज़ुर्ग का ख्याल है कि हमारी जाति असल कश्मीरी है और हम भाटिया नहीं हैं; बल्कि कश्मीरी जाट हैं। कई बुज़ुर्ग हमें भाटिया के स्थान पर भाट सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि हम संगीत और काव्य के महारथी थे और राजदरबारों में हमारा बड़ा सम्मान होता था। लेकिन मुझे इस सम्मान के बावजूद भाट के मुक़ाबले में शब्द 'राजपूत' अधिक अच्छा लगता है। भाट और भाटिया में ध्वनि का जो ताल-मेल है, वही धोखे का कारण है, अन्यथा केवल ध्वनि के ताल-मेल के कारण अपना पद कौन गिराता है!

उम्र—जन्मतिथि में गड़बड़ के कारण ठीक-ठीक उम्र बताना अशिष्टता है। हां, पिछले हफ़्ते डाक्टर ने आंखें टैस्ट करते हुए कहा था कि चश्मे का नम्बर बदलवाना पड़ेगा, क्योंकि मालूम होता है उम्र चालीस के पेटे में पहुंच चुकी है।

ज्योतिष-विद्या के एक महापंडित ने कहा था कि चालीसवें वर्ष में पहुंचते ही तुम एकदम प्रसिद्ध हो जाओगे; अतएव परसों एक गुण्डे ने नल पर बारी से पानी न भरने के अपराध में मुझे इतना पीटा कि मेरी नाक की हड्डी और दांत टूट गए और दूसरे दिन मोटे शीर्षकों के साथ समाचारपत्र में यह समाचार छप गया और मैं एकदम देश-भर में प्रसिद्ध हो गया।

इस नाते उम्र चालीस ही समझी जाए; यों मानसिक रूप से अस्सी वर्ष का हो चुका हूं। जीवन में 'चर्के' बहुत खाए हैं, इसलिए!

विवाहित या कुंवारा—विवाहित ही समझिए। क्योंकि पत्नी की धड़ल्लेदार उपस्थिति में इन्कार का साहस नहीं। विवाहित होने का

एक और प्रमाण यह भी है कि विवाह के बाद से मेरा मानसिक विकास रुक चुका है, उदाहरणार्थ पिछले साल मैंने जेल जाना चाहा, क्योंकि उसके बाद मुझे एक राजनीतिक पार्टी की लीडरशिप मिल रही थी; लेकिन मेरे एक बच्चे ने कहा कि मेरी वार्षिक परीक्षा समीप है इसलिए अभी आप जेल मत जाइए। परीक्षा के बाद चले जाइएगा। अतएव बच्चे के भविष्य की खातिर मैंने अपना भविष्य बिगाड़ लिया (हालांकि इसके बावजूद बच्चा फ़ेल हो गया)।

विवाह के बाद मेरा घर आबाद हो गया। न केवल पत्नी से बल्कि कई अन्य चीज़ों से भी। उदाहरणत: पत्नी के तुरन्त बाद बच्चों से। इसके बाद चूहों से, कैलेंडरों से, चारपाइयों से, मेहमानों से, अलगनियों से, साड़ियों से और इन सबके परिणामस्वरूप नित नये बिलों से। सोचता हूं, यदि मेरा विवाह न होता तो बेचारी ये सब चीज़ें कहां जातीं? कहां ठिकाना करतीं…? वास्तव में विवाहित जीवन ने ही मुझे हर चीज़ से सहानुभूति करना सिखा दिया है।

लेकिन कभी-कभी जब रात गहरी हो जाती है, सारा कुटुम्ब सो जाता है और मुझे किसी तरह नींद नहीं आती, तो मुझपर एक बार फिर कुंवारा बनने की धुन सवार हो जाती है, और मैं गौतम बुद्ध की तरह खाट पर से उठता हूं। पत्नी पर और बच्चों पर एक नज़र डालता हूं। स्लीपर पहनता हूं और मुक्ति-मार्ग पर अभी दो ही क़दम चलता हूं कि पत्नी की आवाज़ आती है, "नींद नहीं आ रही ना! यह सब मच्छरों की हड़बौंग से है। इस बार वेतन मिलने पर मच्छरदानी ज़रूर ले आऊंगी।"

मैं उसे यह नहीं बता सकता कि मुझे कौन-से मच्छर काट रहे हैं; बल्कि चुपचाप चारपाई पर दोबारा लेट जाता हूं और सोचने लगता हूं कि नींद पत्नी को भी नहीं आ रही, जबकि गौतम बुद्ध की पत्नी को नींद आ जाया करती थी। इसलिए एक नहीं दो मच्छरदानियां लानी चाहिए। एक मच्छरदानी से अगर काम चल सकता तो मैं कभी का बुद्ध बन गया होता।

आमदनी या आय—ज्योतिष के एक और महापंडित का कथन है कि मेरी मासिक आय एक हज़ार रुपया है। लेकिन मालूम होता है

कि महानुभाव ने हाथ मेरा देखा, आय किसी और की बता दी। जिस दिन उसने एक हज़ार रुपये की आय की भविष्यवाणी की थी, उसी दिन मैंने सेविंग बैंक में से एक सौ रुपया निकलवाकर भिखमंगों को भोजन करा दिया था। उसके बाद न तो ज्योतिषी हाथ लगा न रुपया। सेविंग बैंक में से जो एक सौ रुपया निकलवाया था, वह आज तक दोबारा एकत्र नहीं हो सका। हां, दो वर्ष पहले एक महीना जरूर ऐसा आया था जब मुझे सचमुच एक हज़ार रुपये की आय हुई थी। लेकिन बाद में सरकार ने वारंट-गिरफ़्तारी भेजकर मुझसे वह एक हज़ार रुपया सूद-सहित वसूल कर लिया; क्योंकि वह रुपया मैंने सरकार से ऋणस्वरूप लिया था।

तात्पर्य यह है कि मेरी आय उतनी ही है, जितनी कि होनी चाहिए। और इसीलिए मैं आय को हाथ की मैल समझता हूं। लेकिन मैं चूंकि स्वास्थ्य-रक्षा का क़ायल हूं, इसलिए हाथ पर बहुत कम मैल रखता हूं और महीने के आख़िर में तो हाथ इतना साफ़-सुथरा हो जाता है कि चूम लेने को जी चाहता है।

आवास या रहने का मकान—पूर्वजों के पास एक मकान था। माता का जब देहांत हुआ था तो उन्होंने सौगन्ध खाकर कहा था कि मकान सचमुच था। लेकिन मैंने उस मकान को कभी अपना मकान नहीं समझा, क्योंकि पिताजी में और चाचाजी में अक्सर 'तू-तू, मैं-मैं' रहती थी कि मकान किसका है—पिताजी का या चाचाजी का। और पिताजी और चाचाजी जब तेरह वर्ष तक किसी निर्णय पर न पहुंच सके, तो मैं मकान छोड़कर घर से भाग गया और फिर कभी वहां क़दम न रखा।

विचार चूंकि विद्रोही थे, इसलिए तेरह वर्ष से सोलह वर्ष तक फ़ुट-पाथों पर बसेरा किया। बाद में आत्मसम्मान जागा तो एक मित्र के मोटर-गैरिज में रहने लगा। एक बार लोकसम्पर्क-विभाग ने बेघर भिखारियों के लिए 'रैन-बसेरा' आश्रम बनवाया तो मैं वहां उठ गया।

एक कमरे में पच्चीस भिखारी रखे जाते थे। मानवता का यह अपमान देखकर बड़ा क्रोध आता था (क्योंकि विचार पूर्ववत् विद्रोही थे)। अतएव एक बार विभाग के उच्चाधिकारी से झड़प हो गई और मुझे लोकरक्षा में विघ्न डालने के अपराध में आश्रम से निकाल दिया गया।

उस समय से आत्मसम्मान की रक्षा के लिए किराये पर मकान लेने लगा। चालीस वर्ष की उम्र तक आत्मसम्मान का यह भाव अपना रंग जमाए रहा और किराये के बीसियों मकान मुझे अपने आश्रय में लेते रहे।

आजकल मैं जिस मकान में रह रहा हूं, वह मेरा अपना है (क्योंकि विद्रोही विचार अब मुझसे विद्रोह करके जा चुके हैं)। एक कमरा है, एक रसोईघर है। एक छोटा-सा बाथरूम है, एक छोटी-सी बालकनी है। इससे अधिक की न मुझे लालसा है न सामर्थ्य। बड़ी-बड़ी कोठियां और बंगले देखकर अब घृणा भी नहीं होती क्योंकि अब मेरे मन पर बुद्धि का राज्य है। मुझे याद है कि एक बार अपने एक मित्र के बंगले के विशाल बाग़ में बैठकर मैंने एक कविता लिखी थी। मित्रों ने कहा, "कविता घटिया है, पिछली बार तुमने जो कविता लिखी थी, वह बहुत सुन्दर थी।"

मैंने कहा, "वह मैंने अपने मकान में बैठकर लिखी थी।"

मुझे भय है कि यदि कार्पोरेशन को यह पता चल गया कि मेरे मकान में जो कविता लिखी जाती है, वह अधिक सुन्दर होती है तो कहीं मेरा 'डिस-सैक्शन' न बढ़ा दे।

शिक्षा—ज्ञान तथा विद्वत्ता में अद्वितीय हूं। उदाहरणतः मुझे यह मालूम है कि कौआ कांय-कांय क्यों करता है और अधिक सुन्दर लड़कियां अधिक मूर्ख क्यों होती हैं। यह भी जानता हूं कि यदि एक रुपये में एक सेर गुड़ आए तो एक आने में कुछ भी नहीं आएगा (क्योंकि एक आने का गुड़ खरीदने के लिए भी एक आने का जेब में होना ज़रूरी है)। इसके अतिरिक्त और भी सैकड़ों चीज़ों का ज्ञान रखता हूं। जैसे दो व्यक्तियों में झगड़ा करवाने का सबसे आसान तरीका कौन-सा है? झूठ बोलने में सुन्दर वार्ता का कितना महत्त्व है और यह कि मूल रूप से मनुष्य में मूर्खता के कीटाणु मौजूद हैं। मानना न मानना उसके अपने बस में है।

बहुत देर बाद यह ज्ञान हुआ कि ज्ञान का जभी लाभ है यदि उसे व्यवहार में लाया जाए। लेकिन जब मुझे इस बात का ज्ञान हुआ, उस समय तक मैं व्यवहार करने योग्य ही न रहा था। इरादा है कि अगले जन्म में सावधानी से काम लूंगा और ज्ञान का लाभ उठाते हुए किसी

मन्दिर का महन्त बन जाऊंगा।

संतान—तीन बच्चे हैं और एक बिल्ली। बिल्ली को बेटी का दर्जा देता हूं। कोई अच्छा-सा सुशील घराने का बिल्ला ढूंढ़कर शीघ्र ही उसके हाथ पीले करा दूंगा।

शेष तीन बच्चों में से दो लड़कियां हैं, एक लड़का। जब से ये तीनों बच्चे पैदा हुए हैं, मेरे घर में रह रहे हैं। यदि घर से बाहर जाएं भी तो शाम को फिर लौट आते हैं। इनके बूट फट जाएं तो मुझसे नये बूटों का तक़ाज़ा करते हैं और यदि मैं ख़रीदकर न दूं तो मुंह बिसूरकर कहते हैं, "जाओ, हम तुमसे नहीं बोलेंगे!"

यदि बच्चे अपने पिता से न बोलें तो मुहल्ले-बिरादरीवाले बुरा मानते हैं। इसलिए मैं इन्हें बूट ख़रीदकर ला देता हूं। और फिर तो बूट पहनकर मुहल्ले-भर को दिखाते फिरते हैं और पिता की साख जमाते फिरते हैं।

मैं और मेरी पत्नी दोनों इनकी शिक्षा में जुटे रहते हैं; अतएव वे इन दो शिक्षा-ग्रहों अर्थात् अलग-अलग मार्गों पर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। उदाहरणतः यदि मैं एक बच्चे से कहूं कि मुहल्ले के बच्चों से मत लड़ा करो तो मेरी पत्नी उससे कहती है कि ज़रूर लड़ा करो, वरना मोहल्ले के लड़के समझेंगे, कायर है! एक बार मैंने अपनी बेटी से कहा, "लो यह एक लड्डू है, इसे खा लो।" पत्नी ने तुरन्त उसे झिड़ककर कहा, "ख़बरदार जो पूरा लड्डू खाया, आधा लड्डू खाओ, बाकी आधा कल खाना!"

हमारे बच्चे इतने समझदार हैं कि इस दोहरे शिक्षण पर ज़रा भी नहीं घबराते, चुपचाप अपने काम किए जा रहे हैं और हम दोनों के प्रेम से लाभ उठा रहे हैं। वे सही अर्थों में हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं।

धर्म—जन्म के समय हिन्दू था। जवानी में इस्लाम की ओर झुकाव हुआ। सिख मित्रों से मित्रता बढ़ी तो सिख धर्म में बड़ा आकर्षण नज़र आया। किसीने बताया कि यह तो हिन्दू धर्म की एक शाखा है; अतएव इसे भी तज दिया। कुछ समय तक 'मानव-धर्म' अपनाया; लेकिन एक बार इस धर्म का अगुआ एक होटल में चमचा चुराते हुए पकड़ा

गया तो मैंने चमचे का मूल्य देकर इस धर्म से भी पीछा छुड़ा लिया। आजकल नास्तिक हूं। मेरी तरह मेरी एक मुर्गी भी नास्तिक है, क्योंकि वह हिन्दू, सिख, मुस्लिम, ईसाई जिसके यहां भी बेची गई, उसीके घर में अंडे देती रही। मैंने उनमें से हरएक के घर का अंडा खाकर देखा है, हर जगह उसका स्वाद अंडे का सा ही था, खरबूज़े या मूली का सा नहीं था।

मेरे बच्चे मुझसे अक्सर पूछते हैं, "पिताजी ! हमें बताइए, हमारा कौन-सा धर्म या मत है ?" और मैं उनसे कहा कहता हूं, "इश्क़ मत !"

उनकी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या कह रहा हूं। लेकिन जब ज़रा होश संभालेंगे तो किसी न किसी चिड़िया, तोते, बिस्कुट, साईकल, चारपाई, नेकटाई, चांद या वर्षा से इश्क़ करने लगेंगे और वही उनका धर्म बन जाएगा (मेरा ख्याल है इसे ही धर्म-सम्बन्धी स्वतंत्रता कहते हैं)।

राजनीतिक विचार—एक बार का ज़िक्र है कि मुझमें राजनीतिक विचार पैदा हो गए थे। जब लोगों को मालूम हुआ कि मुझमें राजनीतिक विचार आ गए हैं, तो वे प्रतिदिन मेरे घर आने लगे। एक बार मैं अपने घर में बैठा गुलाब का एक फूल सूंघ रहा था, तो एक महाशय आए और बोले, "आपके राजनीतिक विचार तो दूसरी क़िस्म के हैं और आप फूल गुलाब का सूंघ रहे हैं, लोग एतराज़ करेंगे।"

"क्यों ?"

"आपके राजनीतिक विचारों की मांग है कि जब तक प्रत्येक व्यक्ति में यह फूल सूंघने की आदत पैदा न हो जाए, उस समय तक आप भी इस सुगंधि के क़रीब न फटकें और बलिदान दें।"

"बलिदान से क्या होगा ?"

"आप राजनीतिक नेता बन जाएंगे।"

आजकल मेरे घर कोई नहीं आता और मैं बिना झिझक गुलाब की सुगंधि सूंघता रहता हूं। गुलाब की सुगंधि ने मुझे नेता नहीं बनने दिया ; अतएव मेरे भीतर से राजनीतिक विचार निकल गए और केवल गुलाब की सुगंधि बाक़ी रह गई है।

अब सिवाय खुफ़िया पुलिस के मेरे राजनीतिक विचार कोई नहीं जानता। स्वयं मैं भी नहीं।



ए० हमीद

अमृतसर के एक मोहल्ले में १९२४ की एक रात को ए० हमीद का जन्म हुआ। नक्षत्र न जाने किन दिशाओं में थे, क्योंकि भाग्य उनके पांव का चक्कर बन गया और उन्हें अमृतसर से बम्बई, बम्बई से कलकत्ता और कलकत्ता से बर्मा के जंगलों में लिए-लिए फिरता रहा। आजकल वे लाहौर की सड़कों पर घूमते हैं, लेकिन रंगून, मांडले, प्रोम और रावन के देश की यादें अब भी उनकी रचनाओं में छलक आती हैं।

गुलाब और मौलसरी के अधखिले उदास फूलों, पीले और ऊंघते हुए चांद और रोते हुए बनों के इस रोमांटिक कहानीकार ने—जिसने अपने संक्षिप्त-से जीवन में क्लर्की, मुहर्रिरी, क़ुलीगीरी, फिटरी और रेडियो एनाउंसरी करने के साथ-साथ, न जाने क्योंकर बहुत सुन्दर कहानियां लिखी हैं—हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में भी अपने क़लम की प्रखरता दिखाई है। 'क़ब्र से एक ख़त' इसका जीवन्त प्रमाण है।

क़ब्र से एक ख़त

क़ब्रिस्तान मियानी साहब,
क़ब्र नं० ५५५ पी० बी० एल०,
लाहौर ।

मेरे प्यारे अब्बाजान !

मैं यहां ख़ैरियत से हूं और आपकी ख़ैरियत, ख़ुदावंद-ए-करीम से नेक चाहता हूं। सूरत-ए-अहवाल यह है कि वंदा जब से आप लागों से जुदा हुआ है, एक घड़ी भी चैन की नसीब नहीं हुई (मुआफ़ कीजिए, मेरी घड़ी को चाबी देते रहा करें और उसकी चैन की हिफ़ाज़त करें।) कई दिनों से सोच रहा कि आप लोगों को ख़त लिखूं जिसमें इस भेद-भरे शहर के कुछ हालात आपको बताए जाएं, लेकिन चूंकि यहां हर ख़त सैंसर होता है, इसलिए मजबूर था। अब बड़ी मुश्किल से बार-बरदारख़ां गोरकन [1] के हाथों यह ख़त 'स्मगल' करवा रहा हूं।

प्यारे अब्बाजी ! जिस वक्त आप लोगों ने मुझे मुर्दा समझकर रोना-पीटना शुरू कर दिया, मैं हैरान रह गया, क्योंकि मैं सब कुछ देख और सुन रहा था। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि मैं न तो आंखें घुमा सकता था, और न जिस्म का कोई हिस्सा ही हिला सकता था। फिर जब मुर्दे नहलानेवाले हाजी ग़ुसलबख्श ने मुझे तख़्ते पर लिटाकर नंगा कर दिया तो मारे शर्म के मैं पानी-पानी हो गया। लेकिन क्या करता ! मजबूर था ! इसके बाद उसने ठंडे पानी से भरे हुए लोटे एक के बाद एक मुझपर उंडेलने शुरू कर दिए और मेरी तो जान ही निकल गई। हाजी ग़ुसलबख्श का ज़ुल्म यहीं पर ख़त्म नहीं होता, रही-सही कसर उन्होंने मेरी नाक में गीली रूई के फाहे जमाकर पूरी कर दी, जिससे

१. क़ब्रें खोदनेवाला

मेरा दम घुटने लगा। ख़ुदा उसे पहचाने (और यक़ीन करें अब्बा-जान, ख़ुदा बड़ी जल्दी पहचान लेता है!)! आख़िर उस कमबख़्त को आना तो इसी क़ब्रिस्तान में है! मैं भी बदले ले-लेकर गिनूंगा!

अब्बाजान! आप यह ख़ुशख़बरी सुनकर यक़ीनन ख़ुशी के मारे मोमजामे से बाहर आ जाएंगे कि आपके ख़ुशक़िस्मत बेटे को दोज़ख़ में जगह मिल गई है। कल रेडियो पर दोज़ख़ के नये अलाटियों के नामों का ऐलान हुआ था, उसमें मेरा नाम भी था। बस इस हफ़्ते के अन्दर-अन्दर वहां पहुंच जाऊंगा, जहां लगभग सभी रिश्तेदारों और यार-दोस्तों से मुलाक़ात होगी। उम्मीद है, आप भी, अगर ख़ुदा ने चाहा तो, इसी जगह तशरीफ़ लाएंगे। दरअसल दोज़ख़ में बड़ी रौनक और चहल-पहल होती है। जन्नत में तो मालूम होता है जैसे जिन्न फिर गया हो। मैंने सीज़न टिकट लेकर उन तमाम जगहों की सैर कर ली है। इस सैर का हाल आगे चलकर बताऊंगा। अभी ज़रा पीछे चलकर मेरे 'सफ़र-ए-मुल्क-ए-अदम की रूदाद'[1] सुनिए।

नहला-धुलाकर मुझे कफ़न में लपेट दिया गया और लोग बारी-बारी मेरा मुंह देखने लगे। शायद आपको याद हो अब्बाजान कि खाला दोज़ख़ बीबी ने मेरा मुंह देखकर चीख़ मारी थी और कमरे से भाग गई थीं। दरअसल वे डर गई थीं; क्योंकि जब वे मेरा मुंह देखने लगी थीं तो मैंने ज़बान बाहर निकाल ली थी। ख़ुदा के लिए मस्जिद के इमाम से कहकर ताबूत को गर्म पानी से नहलाएं। घर से क़ब्रिस्तान तक मुझे उस ताबूत ने इस बुरी तरह काटा कि अगर आप उसके बाद मुझे काटते तो बदन में लहू नाम को न होता। मेरे जनाज़े में आपने अजीब-अजीब बागड़-बिल्ले जमा कर लिए थे! एक तो तमाम लोग बूढ़े थे, दूसरे कोई ख़िज़ाब न मिलने की शिकायत कर रहा था तो कोई नये मकान पर लगी ईंटों का हिसाब कर रहा था। कुछ लोग कंधा देते हुए मुझे गालियां भी दे रहे थे और मैं भी उन्हें गालियां दे रहा था। ख़ैर ज्यों-त्यों करके क़ब्रिस्तान पहुंचे। जिस वक़्त आप मुझे क़ब्र में लिटाकर चले गए, तो मुझे पूरी तरह होश आ गया और मेरे हाथ-पैर भी काम करने लग पड़े। मैंने जो चीज़ सबसे पहले नोट की, वह यह

१. परलोक-यात्रा का वृत्तांत

थी कि मेरा कफ़न कीचड़ में लथपथ था। एक तो ग्राप लोगों ने बाक़ायदा निशाने बांधकर मुझे मिट्टी के ढेले मारे थे और दूसरे जाते हुए मुझपर गुलाब के अर्क़ की पूरी बोतल उंडेल दी थी। मेरे पास तौलिया भी नहीं था। मजबूर होकर नीचे से कफ़न का हिस्सा निकालकर मुंह पोंछा और नाक और आंखों में घुसा हुआ मुश्क काफ़ूर निकालने लगा। क़ब्र में गुलाब के अर्क़ और मुश्क काफ़ूर की बू से दम घुटा जा रहा था। अभी मैं अच्छी तरह उठकर बैठा ही था कि क़ब्र के मुंह पर रखे हुए मिट्टी के घड़े एक तरफ़ हटे और दो आदमी 'टैक्साज़ क़ॉउ ब्वायज़' का लिबास पहने, सिरों पर लम्बे-चौड़े फ़ीतेदार हैट रखे, पिस्तौलें लटकाए अन्दर दाख़िल हुए। दोनों की शक्लें क़रीब-क़रीब एक जैसी थीं और वे चिगूंग-गम चबा रहे थे। एक के हाथ में रजिस्टर था और दूसरे के हाथ में हरी जिल्दवाली किताब, जिसपर सुनहरी हरफ़ों में लिखा था—'बहिश्ती ज़ेवर उर्फ़ हूरों का तराना'। अन्दर दाख़िल होते ही उन्होंने कंधों पर लगी मिट्टी झाड़ी और आपस में बोले, "ख़ुदा जाने ये लोग मिट्टी के घड़े यहां क्यों रख जाते हैं!"

"इस बारे में फ़रिश्ता यूनियन को ध्यान दिलाना चाहिए।"

"आप कामरेड मीसाइल्ज़ से मिलें।"

"वह जो बारिश का फ़रिश्ता है?"

"हां।"

"वह तो सुना है, सारा दिन नहाता रहता है और गुसलखाने से बाहर ही नहीं निकलता।"

"जो हो, इन कच्चे घड़ों का टंटा ज़रूर ख़त्म करना चाहिए। हद हो गई, जिसे देखो घड़ों की जोड़ी साथ लिए चला आ रहा है!"

इसके बाद उन्होंने मेरी तरफ़ देखा। एक ने जेब से कार्ड निकालकर मेरे आगे रख दिया और दूसरा मेरे कफ़न पर उंगली फेरकर बोला, "चाबी का लट्ठा फिर मिलने लगा है भाई!"

दूसरे ने ग़ौर से लट्ठे पर नज़रें जमाकर कहा, "मेरे ख़्याल में 'नं० सोलह हज़ार' है।"

मैं कार्ड पढ़ने लगा। कार्ड लकड़ी की छोटी-सी तख़्ती थी; जिसके बीचोबीच लिखा था:

"मैसर्ज़ 'मुनकिर-नकीर एण्ड मुनकिर नकीरान'[1]
हिसाब-किताब चैक करनेवाले
मियानी नं० १३ (उत्तर-पश्चिम)"

प्यारे अब्बाजी ! मैं डर गया और दिल में सोचने लगा, 'ओ मियां मुहर्रमअली ! ओ बकरे की मां ! अब कब तक ख़ैर मनाएगी ? तैयार हो जा। तेरी क़िस्मत का फ़ैसला होनेवाला है। असल में मुझे सबसे ज़्यादा डर इस बात का था कि कहीं ये हज़रात मुझसे अरबी ज़बान में सवाल न करें। लेकिन ख़ुदा का शुक्र है कि उन्होंने पहले ख़ालिस अमरीकी और फिर ठेठ पंजाबी ज़बान में बातें शुरू कर दीं। अगरचे उनके सवाल 'आउट' नहीं करने चाहिए, फिर भी मैं आपको लिखे देता हूं, क्योंकि मैंने सुना है कि वे हर मुर्दे से अलग-अलग सवाल करते हैं। अब जो मेरे और उनके बीच बातचीत हुई, वो भी सुन लीजिए :

मुनकिर—तुम्हारा नाम ?

मैं—मुहर्रमअली।

मुनकिर—कब पैदा हुए ?

मैं—पहली मुहर्रम को।

मुनकिर—बाप का नाम ?

मैं—रमज़ानअली।

मुनकिर—कब पैदा हुए ?

मैं—पहली रमज़ान को।

मुनकिर—मां का नाम ?

मैं—बीबी शब-बरात।

मुनकिर—पैदा होने की तारीख़ ?

मैं—अभी निकली नहीं।

नकीर—मिस्टर ! इस्लामी महीनों को 'एक्सप्लायट' करने का तुम लोगों ने ठेका तो नहीं ले रखा ?

मैं—जी हां, मेरे बाप के पास अफ़ीम का ठेका है।

मुनकिर—मुहल्ले के चौधरी का नाम ?

मैं—शेख़ इंद मोहम्मद थियेटरवाले।

---

१. दो फ़रिश्ते, जो मुर्दों से सवाल-जवाब करते हैं।

मुनकिर—अच्छा मिस्टर ! अब तुम्हारा जेनरल-नॉलेज का इम्तिहान होगा। एक बात याद रखो। हर सवाल का जवाब फ़ौरन और बिना हिचकिचाए देते जाना।

मैं—बहुत अच्छा जनाब !

मुनकिर—(रजिस्टर के पन्ने पलटते हुए) एक और एक ?

मैं—(जल्दी से) ग्यारह।

मुनकिर—दो और एक ?

मैं—तीन।

मुनकिर—तीन और एक ?

मैं—ख्वातीन[1]।

मुनकिर—सिर मुंडाते ही…?

मैं—आंगन टेढ़ा !

मुनकिर—ऊंट रे ऊंट…?

मैं—बादामी बाग़ !

मुनकिर—आ बैल…?

मैं—तुम्हें मार !

मुनकिर—नाच न जाने…?

मैं—मिस कुक्कू !

मुनकिर—हाथ कंगन को…?

मैं—खजूर में अटका !

मुनकिर—शाबाश ! जेनरल-नॉलेज (ए) में तुम पास हो गए। अब पर्चा (बी०) शुरू होता है—(नकीर से) मिस्टर नकीर, चियूंग-गम खत्म हो गईं ?

नकीर—नहीं तो, ये लीजिए।

मुनकिर—(चियूंग-गम मुंह में डालते हुए) मिस्टर मुहर्रमअली ! यह पर्चा पहले से ज़रा मुश्किल है; इसलिए ज़रा सोच-समझकर जवाब देना।

मैं—आप फ़िक्र न करें।

---

१. महिलाएं

मुनकिर—वो कौन-सा उक़दा है कि वा[1] हो नहीं सकता ?

मैं—अपनी-अपनी बोलियां सब बोलकर उड़ जाएंगे।

मुनकिर—ख़ुदा ने हुस्न से इक रोज़ क्या सवाल किया ?

मैं—एक सौ रुपये का तीन फ़ीसद शरह के हिसाब से सूद-दर-सूद निकालो।

मुनकिर—शाबाश ! अच्छा, अब बताओ फ़िल्म 'बरसात' में प्लेबैक गाने किसने गाए थे ?

मैं—लता, रफ़ी और मुकेश ने।

मुनकिर—शाबाश !

नकीर—कामरेड ! 'बरसात' अभी तक यहां क्यों नहीं लगी ?

मुनकिर—पता नहीं, हालांकि नमूना[2] 'मुश्क काफ़ूर' टाकीज़ में बराबर चल रहा है—हां तो मिस्टर ! यह बताओ, नमूना क्या होता है ?

मैं—नमूनिये का पहला हमला।

मुनकिर—हमला क्या होता है ?

मैं—हामिला औरत।

मुनकिर—औरत क्या होती है ?

मैं—मस्तूरात[3]।

मुनकिर—मस्तूरात क्या हुआ ?

मैं—जो रात को मस्त कर दे।

मुनकिर—शाबाश ! तुम दोनों पर्चों में कामयाब हो गए। मैं तुम्हें ख़ुशख़बरी सुनाता हूं कि तुम्हारे लिए दोज़ख़ में एक बर्थ अलाट कर दी गई है। तुम्हें सिर्फ़ उतनी देर तक यहां इन्तज़ार करना पड़ेगा जब तक उन लोगों को वहां से निकाल नहीं दिया जाता, जो इस वक्त वहां रह रहे हैं। अब हम जाते हैं क्योंकि वक्त बहुत है और काम कोई नहीं—ख़ुदा हाफ़िज़ !

अब्बाजान ! इसके बाद वे चले गए। जाते हुए मिस्टर नकीर के दिल में न जाने क्या आई कि उसने पिस्तौल निकालकर दो फ़ायर किए और मेरी क़ब्र के दोनों घड़े टुकड़े-टुकड़े कर दिए। मैंने अभी इतमीनान की सांस ली ही थी कि अचानक मेरी दाईं तरफ की दीवार पर किसीने

१. हल २. ट्रायल ३. महिलाएं

आहिस्ता से खिड़की खोल दी। यह खिड़की दूसरी क़ब्र की थी। खिड़की में से एक बुज़ुर्ग-सूरत आदमी का चेहरा दिखाई दिया जो दाढ़ी पर मेहंदी लगा रहे थे। उन्होंने मेरी तरफ़ मुस्कराकर देखते हुए कहा :

"सुबह-बख़ैर[1] साहबज़ादे ! कहो, इम्तिहान कैसा रहा ?"

मैंने बताया कि मैं कामयाब हो गया हूं और मुझे दोज़ख़ में जगह मिल गई है।

"बहुत ख़ूब ! मुझे पहले ही यक़ीन था कि मेरे पास कोई परहेज़-गार दफ़न नहीं हो सकता।"

"कहो, लाहौर का क्या हाल है ? तुम कौन-से इलाके से आए हो ?

"मुज़ंग से।"

"ख़ूब ! मोहल्ला कौन-सा है ?"

"दाराशिकोह इक़बाल।"

"ख़ूब ! मोहल्ले के चौधरी ईद मोहम्मद कैसे हैं ? मैं तो उन्हींका इन्तजार कर रहा हूं। 'प्लाज़ा सिनेमा' जल गया था, उसकी मरम्मत हुई है या नहीं ? सुना है, शकरकंदी फिर सस्ती हो गई हैं। इनायतबाई ढेरू-वाली अभी ज़िन्दा है क्या ? ख़ूब गाती है ज़ालिम ! ख़ास तौर पर जब गाते-गाते उसका गला और नाक फूल जाता है तो कितनी अच्छी लगती है ! इमानतदीन, ख़्यानतदीन को जानते हो ? ये दोनों मेरे बेटे हैं। कोई कह रहा था कि मेरे बाद इन्होंने एक-एक शादी और कर ली है और ख़ूब रंगरलियां मना रहे हैं। कोई बात नहीं। आख़िर उन्हें भी यहां आना है। गिन-गिनकर बदले चुकाऊंगा ! आज का अख़बार पढ़ा ?"

"जी नहीं।"

"बस, आता ही होगा।"

इतने में बड़े मियां की क़ब्र की दूसरी खिड़की खुली और एक कफ़नपोश लड़का अख़बार अंदर फेंककर चला गया।

"लो, आधा तुम पढ़ो।"

मैंने आधा अख़बार ले लिया और पढ़ना शुरू कर दिया। इस अख़बार का नाम 'इनाल्ला' था और सबसे ऊपर यह शे'र लिखा था :

१. सुबह का प्रणाम

"मौत का एक दिन मुऐयन है,
नींद क्यों रोज़ - रोज़ आती है।"[1]

अख़बार की पहली बड़ी सुर्ख़ी यह थी :

"वफ़ात-रोड[2] पर हंगामा ! सिनेमा के टिकटों पर मुर्दों की भयानक लड़ाई ! गुलाब के अर्क़ की बोतलें चल गईं—तीन मुर्दों के कफ़न चिथड़ा-चिथड़ा हो गए ! पांच मुर्दे ज़ख्मों की ताब न लाकर ज़िन्दा हो गए !"

कुछ इश्तिहार इस तरह के थे :

(१) गोगोल एण्ड गोगोल—मशहूर ऐनकोंवाले
ठण्डे-मीठे चश्मे—सायादार चश्मे,
टिकटिकी बांधकर और टिकटिकी खोलकर
देखनेवाले चश्मे,
हम 'सेलें' या हमसे लें।
(दुकान हर रोज़ बन्द रहती है।)

(२) हकीम दांते का दांतों का मंजन
दांतों को कीड़ा लग गया हो—कीड़ों के दांत निकल आए हों,
सर्दी में दांत बजते हों,
इसका इस्तेमाल इकसीर[3] का काम देगा।
इसके अलावा दुश्मन इस्तेमाल करे तो उसके दांत,
फ़ौरन खट्टे हो जाएंगे।
बत्तीस दांतों की पूरी ख़ूराक—फ़ी बोतल दो रुपया।

(३) "क्या आपको क़ब्र में कीड़े तंग करते हैं ?"
अगर करते हैं तो,
'ख़ारशोन' ख़रीदिए।
इसे कीड़ों पर छिड़कने से वो अंधे हो जाएंगे,
और अंधाधुंध भागना शुरू कर देंगे।

---

१. ग़ालिब का असल शे'र है :
"मौत का एक दिन मुऐयन है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती।"

२. मृत्यु-सड़क ३. रामबाण

तक़रीबात[1] के कालम में दर्ज था :

"तुर्बत[2] हाल में कल शाम सवा सात बजे मौलवी
बदरुद्दीन साहब मस्जिद। से जूते चुराने के नये
तरीक़ों पर धुआंधार लैक्चर देंगे (हाल से धुआं
बाहर निकालने का ख़ास इन्तज़ाम है।)"

बीच में एक कार्टून था। उस कार्टून में एक छोटे क़द का मुर्दा एक ऊंची-लम्बी कफ़नपोश औरत का मुंह चूमने की कोशिश कर रहा था। नीचे लिखा था :

"बोसे[3] खट्टे हैं!"

अख़बार का इदारिया[4] 'पुरानी क़ब्रों की मरम्मत' पर था। साथवाले कालम में एक 'अदबी अंजुमन'[5] से मुतारिफ़[6] करवाया गया था, जो नई-नई मियानी साहब में क़ायम हुई थी। इस अंजुमन का नाम 'हल्का अर्बाब-ए-ज़ौक़' था। 'एडिटर के नाम' के कालम में एक लड़की का दिलचस्प ख़त छपा था; जिसने क़ब्र नं० ८४० के मुर्दे पर इल्ज़ाम लगाया था कि वह उसे बेहुज़ूरी बाग़ में ले जाकर सारा दिन सब्ज़ बाग़ दिखाता रहा और नोट एक भी नहीं दिखाया। इस कालम के ऊपर लिखा था कि एडिटर हर मज़मून या ख़त भेजनेवाले से मुत्तफ़िक है।

अब्बाजान! पूरा अख़बार इसी क़िस्म की बातों से भरा हुआ था। मेरे साथवाले बड़े मियां भी अख़बार पढ़ चुके थे और अब मेहंदी लगी दाढ़ी पर पीपल के पत्ते बांध रहे थे। शाम को मैंने कफ़न से अपने-आपको लपेटा और सैर के लिए चल निकला।

बाज़ार सज रहे थे। मुर्दे कफ़न लपेटे आ-जा रहे थे। तक़रीबन हर मुर्दे ने कफ़न पर कोई न कोई शे'र लिखवा रखा था। किसीने लिखवाया था :

"आगाह[7] अपनी मौत से कोई बशर[8] नहीं।
सामान सौ बरस का है पल की ख़बर नहीं॥"

किसीने यह शे'र पसंद किया था :

---

१. पर्व २. समाधि-भवन ३. चुम्बन ४. सम्पादकीय ५. साहित्य-सभा ६. परिचित ७. जानकार ८. मनुष्य

"हर सुबह सफ़र, हर शाम सफ़र।
इस दुनिया का अंजाम सफ़र॥"

किसीपर लिखा था :

"या इलाही मिट न जाए दर्द-ए-दिल।
मिटनेवालों को मिटाए दर्द-ए-दिल॥"

किसीने सिर्फ़ इतना लिख दिया था :

"हार्न देकर गुज़रें!"

मैं एक होटल में दाखिल हो गया, जहां काफ़ी गहमा-गहमी थी। लोग मेज़ों के गिर्द बैठे गर्म-गर्म गुलाब का अर्क़ और अर्क़-ए-बेज़बान पी रहे थे। एक आदमी ऊंचे चबूतरे पर खड़ा लोगों को मशहूर लतीफ़े सुना रहा था और अक्सर लोग रो रहे थे और उनकी आंखों से गुलाब के अर्क़ के आंसू गिर रहे थे।

अब्बाजान! मुझे मुआफ़ कीजिएगा। अब मैं मजबूरन एक ऐसी बात लिखने लगा हूं जिसे पढ़कर आप ज़रूर शर्माएंगे। मैं यहां एक औरत का दिल ले बैठा हूं। दिल उसने अचानक दे दिया। और चूंकि बहुत भारी था इस लिए फ़ौरन बैठना पड़ा। दरअसल मैं उसके पास बीड़ी सुलगाने के लिए दियासलाई लेने गया था और दिल ले आया। अब्बाजान! उस लड़की का नाम तुर्बतआरा है और वह बोसकी का कफ़न इस्तेमाल करती है। और उसके कफ़न पर मशहूर फ़िल्म 'पोस्ती' का पूरा खुलासा[1] और गाने छपे हुए हैं। कल जब उसने मुंह आस्मान की तरफ़ उठाकर 'ग़ैबी पंजा उर्फ़ तीन हरामज़ादे' में गाया हुआ मिस 'भूतनी' का मशहूर गीत—'मैं तो घास चरूंगी घास रे!' सुनाया, तो लोगों की आंखों में आंसू भर आए और वे एक क़तार में खड़े होकर ज़ार-ओ-क़तार रोने लगे। तुर्बतआरा से मेरी उसी होटल में मुलाक़ात हुई थी। वह मेरे क़रीब ही क़ब्र नं० ४२० पी० बी० एल० में रहती है। परसों उसने मुझे अपनी क़ब्र में बुलाया था। मैंने देखा कि उसने क़ब्र में एक्टरों और एक्ट्रेसों की तस्वीरें लगा रखी थीं। हम देर तक बैठे बातें करते रहे। उसने मुझे कई फ़िल्मी गीत सुनाए। उसे भी दोज़ख में जगह मिली है और हमारा प्रोग्राम यह है कि वहां पहुंचते ही किसी अच्छे-से

१. सारांश

मौलवी से मिलकर निकाह पढ़वा लेंगे और बाक़ी उम्र यादे-इलाही में बसर करेंगे।

उसी दिन बाज़ारों की सैर करते हुए मुझे इत्तिफ़ाक़ से ख़ाला ज़ैनब मिल गईं। वे चौक संगे-मजार में आलू-पालक ख़रीद रही थीं। मुझे देखते ही उन्होंने अल्लम-ग़ल्लम बलाएं[1] लेनी शुरू कर दीं और बोलीं :

"कब आए बेटा ? मैं तो अपने अज़ीज़ों की सूरत को तरस गई थी ! ख़ुदा करे वे लोग एकदम यहां आ जाएं। तुम्हारी मां को मेरे सवा तीन रुपये देने थे। अब सोचती हूं कि वह यहां आ जाए तो उससे ले लूं।"

अम्मां को कह दें कि उनके सवा तीन रुपये आती दफ़ा लेती आएं। वहीं खड़े-खड़े घड़ियाल ने चार बजाए और इसके साथ ही किसीने गूंजदार आवाज़ में यह शे'र पढ़ा :

"ग़ाफ़िल तुझे घड़ियाल यह देता है मुनादी।
गर्दूं ने[2] घड़ी उम्र की इक और घटा दी।।"

शाम को जिस वक्त मैं अपनी क़ब्र में पहुंचा तो बड़े मियां अपनी क़ब्र के घड़े पर माहिया गा रहे थे। जैसाकि मैं पहले अर्ज़ कर चुका हूं, पिछले हफ़्ते हम कुछ लोग जन्नत और दोज़ख की सैर को गए हुए थे। अगरचे हमपर बहुत-सी पाबंदियां लगा दी गई थीं और वक्त भी थोड़ा मिला था, फिर भी हमने काफ़ी सैर की। सबसे पहले हमें जन्नत में ले जाया गया।

जन्नत के बड़े फाटक पर एक बोर्ड लटक रहा था, जिसपर इस क़िस्म की हिदायतें लिखी थीं :

जन्नत के खुलने के औक़ात[3]

गर्मियों में............दोपहर बारह बजे से तीन बजे तक।

सर्दियों में............धूप निकलने से पहले और धूप निकलने के बाद।

(१) जन्नत में दाख़िल होते वक्त अपनी जेब-पाकेट से होशियार रहें।

---

१. चुम्बन २. आकाश ३. समय

(२) अंदर फूल तोड़ना और जानवरों को तंग करना मना है।

(३) शहद की नहरों में तैरनेवाली मक्खियों को न छेड़ें।

(४) किसी हौज़ पर मुंह-हाथ और कपड़े धोना मना है।

(५) नहर पर नहानेवाले के कपड़े ज़ब्त कर लिए जाएंगे।

(६) हूरों से मज़ाक़ न करें।

(७) शराब-ए-तहूरा[१] पीकर शोर न मचाएं।

(८) पार्कों में गिल्ली-डंडा न खेलें, वरना उसी डंडे से मरम्मत की जाएगी।

(९) अपनी तस्बीहें[२], लोटे, मिसवाकें[३], मिट्टी के ढेले, मुसल्ले[४], दाढ़ियां और नक़दी यहां जमा करवाकर जाएं।

अब्बाजान! चूंकि हम लोग सिर्फ़ सैर करने आए थे इसलिए हम-पर ज़्यादा सख्ती नहीं की गई। मिस्टर रिज़वान[५] ने, जो फूलों की चादर ओढ़े बैठा था और गुलकंद खा रहा था, हमपर गुलाब के फूलों का अर्क़ छिड़का और हमारे लिए फाटक खोल दिया। अन्दर पहुंचकर जो चीज़ मैंने सबसे पहले महसूस की वह यह थी कि हर तरफ़ खामोशी छाई हुई थी। दूर-दूर तक कोई इन्सान दिखाई न देता था। यहां-वहां सोने के पेड़ चुपचाप खड़े थे। हममें अपने चचा करीमबख्श सुनार भी थे। उन्होंने जेब से कसौटी निकालकर उसे एक पेड़ से रगड़ा और सिर हिलाकर बोले, "ऊंहूं, रोल्ड-गोल्ड है!"

कुछ दूर जाकर हमें तीन-चार बुज़ुर्ग-सूरत दरवेश[६] मिले जो एक हूर का पीछा कर रहे थे। तस्बीह फेरते जाते थे और तेज़-तेज़ चलती, बल्कि दौड़ती हुई हूर पर आवाज़ें कस रहे थे, "कित्थे चले ओ मक्खनो? चलो क़्वाली सुना ल्याइए!"[७]

एक जगह बेचारी हूर रुक गई। और उसने सैंडल उतारकर उन बुज़ुर्गों की वह मरम्मत की कि वे दाढ़ियां वहीं छोड़कर भाग गए।

अब हम शहद की एक नहर के किनारे पहुंच गए। वहां इतनी मक्खियां थीं कि उनकी भनभनाहट से कान-पड़ी आवाज़ सुनाई न देती

---

१. जन्नत की शराब २. मालाएं ३. दातुनें ४. नमाज़ पढ़ने की चटाइयां ५. जन्नत का दरबान ६. फ़क़ीर ७. "कहां चले हो मक्खन? चलो क़व्वाली सुनवा लाएं!"

थी। कुछ मौलवीनुमा[1] लोग शहद में पांव लटकाए बैठे थे और कुछ उसे बदन पर मल रहे थे। एक मौलाना साहब क़ुलचे पर शहद डाले उसमें से मक्खियां निकाल रहे थे, कभी-कभी आस्मान की तरफ़ मुंह उठाकर दर्दनाक आवाज़ में पुकारते थे, "या रब्बुल इज़्ज़त ! यह मक्खियों का शहद है या शहद की मक्खियां ?"

एक हौज़ पर हमने देखा कि कुछ लोग नहा रहे हैं और कुछ धोतियां, पगड़ियां और अम्मामे[2] धो रहे थे। पास ही अंगूर का एक दाना पड़ा था। वह इतना बड़ा था कि तीन-चार नमाज़ी उस पर सफ़ बिछाकर नमाज़ पढ़ सकते थे। एक बुज़ुर्ग हौज़ के किनारे बैठे मिसवाक कर रहे थे और साथ ही साथ दाढ़ी हिला-हिलाकर यह मिसरा[3] गाकर पढ़ रहे थे :

"हमें तो शाम-ए-ग़म में काटनी है ज़िन्दगी अपनी !"

महराब पार्क में मौलवियों की एक टोली धोतियां बांधे गिल्ली-डंडा खेल रही थी। पास ही कुछ बकरे घास चर रहे थे और रो-रोकर यह मिसरा गुनगुना रहे थे :

"मरकर भी घास मिलेगी, हमें मालूम न था !"

प्यारे अब्बाजान ! हम लोग रेडियो-बहिश्त भी देखने गए। वहां मेरी मुलाक़ात अपने मोहल्ले के अल्लादित्ता नअ़तख्वां से हुई जो वहां का स्टेशन डाइरेक्टर था। जिस वक्त हम उसके पास पहुंचे, वह टखनों से ऊंची धोती बांधे बोरिये पर बैठा 'दुआ-ए-गंजुल-अर्श' का मुतालआ[4] कर रहा था। मुझे देखकर वह बहुत खुश हुआ और उसने आप सब लोगों की ख़ैरियत पूछी। फिर उसने हमें सारे रेडियो-स्टेशन की सैर कराई—जो सिर्फ़ एक कोठरी थी। उस स्टुडियो में मुसल्ले बिछे हुए थे और यहां-वहां लोटे पड़े थे। यहां से पांच वक्त अज़ान ब्राडकास्ट होती है और दिन में कई बार वुज़ू के फ़ायदे, मिसवाक करने की बरकतें और शहद से मक्खियां निकालने के तरीक़ों पर तक़रीरें ब्राडकास्ट होती हैं। हफ़्ते में एक दिन, 'बहिश्त हमारा है'—के नाम से एक ख़ास फ़ीचर होता है। यह तीन घंटे का प्रोग्राम होता है और यह सारा वक्त 'पंज गंज मुहम्मद बूटा' पढ़कर गुज़ारा जाता है।

---

१. मौलवियों जैसे २. पगड़ियां ३. पंक्ति ४. अध्ययन

जब हम रेडियो-बहिश्त से बाहर निकले और सवारी के लिए ऊंट का इन्तज़ार कर रहे थे तो अचानक एक तरफ़ से इस क़िस्म की आवाज़ें आने लगीं, "बचाओ···बचाओ···बचाओ !"

अभी हम कुछ समझने भी न पाए थे कि एक ख़ूबसूरत हूर हमारे पास आकर हमारे पीछे छिप गई, "बचाओ···ख़ुदा के लिए मुझे इन मौलवियों से बचाओ !"

अब जो हम देखते हैं तो दो मौलवी साहबान अपनी लम्बी दाढ़ियां दांतों में पकड़े उस हूर के पीछे भागे चले आ रहे हैं। हमें देखकर वे दोनों रुक गए और बड़े ग़ुस्से से हमारी तरफ़ देखने लगे। उनमें से एक बोला, "आख़िर बचकर कहां जाएगी ? तुम भी यहीं हो। हम भी यहीं हैं। हमारे अल्लाह ने चाहा तो बहुत जल्द तेरा दीदार फिर होगा। क्यों मौलवी फ़ज़लशाह साहब ?"

मौलवी फ़ज़लशाह साहब ने खंखारते हुए बड़े यक़ीन के साथ कहा "ख़ुदा ने हमसे हूरों का वायदा किया और वह सच्चा है।"

उसके बाद वे दोनों वहां से चले गए।

हूर अभी तक घबराई हुई थी। उसने अपने पल्लू से मुंह को हवा देते हुए कहा, "आप साहबान का शुक्रिया ! वरना आज तो मेरी जान ही निकल गई थी !"

मैंने आगे बढ़कर कहा, "लेकिन हूरजी! आपको ये लोग फिर तंग करेंगे।"

हूर ने आह भरकर कहा, "मुझे तो इनकी दाढ़ियों से 'ईवनिंग इन बसरा' की बू आती है। काश यहां ऐसे नौजवान भी आते जिनके कालरों से 'ईवनिंग इन पैरिस' की ख़ुशबू आती। मैं तो यहां से भाग जाऊंगी !"

यह कहकर वह एक तरफ़ चल पड़ी और हम ऊंट पर सवार होकर वापस आ गए।

दूसरे दिन हम दोज़ख़ की सैर को गए। दोज़ख़ बड़ी दिलचस्प जगह है अब्बाजान ! ख़ुदा करे कि आप लोग भी जल्दी से यहां आ जाएं।

दोज़ख़ के दरवाज़े पर ही एक जहन्नमी दारोग़ा अपने सामने बर्फ़ की सिल रखे बर्फ़ ताप रहा था। उसने हमें जो सिगरेट पेश किए उनमें

चरस भरी हुई थी। जैसाकि आपको मालूम है, मैंने कभी कोई नशा नहीं किया। चुनांचे मैंने एक सिगरेट तो वहीं सुलगा लिया और एक अपनी जेब में डाल लिया।

हम अन्दर दाख़िल हुए तो एक तरफ़ से आवाज़ आई :

"यह रेडियो-दोज़ख है। अभी-अभी आपको अल्लाहरक्खी भागलपुरवाली जार्ज बर्नार्ड शॉ की ग़ज़ल सुना रही थी—अब वलायतबख़्श ढेरूवाले 'शैले' का एक पंजाबी गीत सुनाएंगे। गीत का मतला[1] साफ़ है और मक़ता[2] यूं है :

"डोली चढ़दयां मारियां वारिस चीकां
मैंनूं लै चले बाबला लै चले वे,
कूड़ी दुनिया ते शान-गुमान कूड़ा,
मियां 'शैले' होरीं सच कह चले वे।"[3]

मैं आपको क्या बताऊं कि दोज़ख में कितनी रौनक़ और चहल-पहल थी। जगह-जगह रंडियां नाच रही थीं और लोग उनके गिर्द झूम रहे थे और उछल-उछलकर उन्हें दाद दे रहे थे। कोई सीटी बजा रहा था तो कोई टांगों के नीचे से बांहें निकालकर मुर्ग़ की बोली बोल रहा था। कहीं मुशायरा हो रहा था। शायर हज़रात बैठे धतूरा पी रहे थे और ख़ाली बोतलें राह चलते जहन्नुमी दारोग़ों के सिरों पर निशाना बांधकर फेंक रहे थे (यही वजह है कि यहां के सब दारोग़े गंजे हैं)। एक दाढ़ीवाले बुज़ुर्ग ने कुत्ते की दुम के साथ पटाख़ों की लड़ी बांधकर उसे आग दिखा दी। तड़-तड़...तड़ाख...पटाखे छूटे तो कुत्ता उछल-कूद मचाने लगा, और इसपर वे बुज़ुर्ग ख़ुशी से चीख़-चीख़कर नाचने लगे।

रंडियों को आग में डालनेवाले दारोग़े उनका गाना सुन रहे थे। जेबकतरों को गुर्ज़ मारनेवाले सिपाही उनसे जेब कतरने के गुर सीख रहे थे। जो सिपाही पत्तेबाज़ों की मरम्मत के लिए थे, उन्हें पत्तेबाज़ों ने ताश के दिलचस्प खेल दिखाने में लगा लिया था। एक सिपाही किसी

---

१. पहली दो पंक्तियां २. आख़िरी दो पंक्तियां ३. वारिसशाह की हीर को बिगाड़कर यों लिखा है कि डोली चढ़ते समय वारिसशाह (हीर के स्थान पर) ने चीखें मारीं कि ऐ बाबुल, वे मुझे ले जा रहे हैं। यह संसार और इसका वैभव झूठा है, 'शैले' (वारिसशाह के स्थान पर) ने सच कहा है।

मशहूर रागी से पक्का गाना सीख रहा था और उसका बुरा हाल हो रहा था। बकरे की बोली बोलना कोई आसान काम थोड़े ही है!

दुकानों पर जगह-जगह अफ़ीम, चरस, कोकीन, शराब, गांजा, मदक, भंग, हलवा, कबाब, ज़र्दा, बिरियानी, पालक-गोश्त, मटर-गोश्त अर्बी-गोश्त, टमाटर-गोश्त वग़ैरा बिक रहा था। एक दुकान के बाहर लिखा था :

"जन्नत से चुराया हुआ माल आ गया है!
क़ीमतों में ज़बर्दस्त कमी !
ब्लैक-मार्केट से खरीदनेवाले,
सफ़ेद दरवाज़े से तशरीफ़ लाएं।"

सड़क पर कुछ सिपाही दो आदमियों को गिरफ़्तार किए लिए जा रहे थे। पूछने पर पता चला कि वे दोनों जन्नत से भागकर जहन्नुम में आ गए थे; और अब उन्हें दोबारा जन्नत में ले जाया जा रहा था। घी बेचनेवाले की दुकान के बाहर लिखा था :

"असली घी खाकर अपनी सेहत से दुश्मनी न करें।
असली नक़ली घी इस्तेमाल करें।
(यहां चोरी का माल भी खरीदा जाता है)"

एक जगह पर किसी लाउड-स्पीकर पर हमें रेडियो-दोज़ख की आवाज़ यह कहती हुई सुनाई दी :

"आज शाम दर्जा-हरारत[१] थर्ड-क्लास होगा। रात को ज़बरदस्त ज़लज़ला आएगा, जिससे सारा शहर तबाह हो जाएगा। सुबह हलकी बूंदाबांदी होगी और मौसम खुशगवार[२] हो जाएगा। हमारे अगले ऐलान का इन्तज़ार बेकार होगा।"

यहां सिर्फ़ एक बात ख़राब थी। और वह यह कि फ़िज़ा[3] बहुत गर्म थी। चुनांचे लोग जगह-जगह बर्फ़ के ढेर लगाए उनकी ठंडक ताप रहे थे और अक्सर नंगे थे। वापसी पर आपके अब्बाजान यानी दादा-जान मरहूम[४] से भी मुलाक़ात हो गई। वे एक होटल के बाहर छाबड़ी रखे रेवड़ियां बेच रहे थे। उनकी बीनाई[५] तो आपको मालूम है, जाती रही थी। किसी तरह मुझे पहचानकर बोले, "बेटा! शुरू-शुरू में

१. तापमान २. रुचिकर ३. वातावरण ४. स्वर्गीय ५. नज़र

मैंने अपना 'आबाई पेशा'[1] करना शुरू किया और लोगों को एक-दूसरे की आंखों में धूल झोंकना और जाली नोट बनाना सिखाया करता था, लेकिन कामयाबी न हुई। अब रेवड़ियां बेचता हूं और खुदा का शुक्र बजा लाता हूं।"

वे इस खुशखबरी पर कि आप लोग भी यहीं आ रहे हैं, बड़े खुश हुए और कहा कि अब तो मैं 'अपनों में रेवड़िया बांट सकूंगा'। फिर मुझको एक रेवड़ी खाने को दी और कहा, "जा ऐश कर !"

उसी होटल के हाल में एक आदमी पांव पर मेढक की चर्बी मलकर लोगों को आग पर नंगे पांव चलने के करतब दिखा रहा था।

वापसी पर हमने वह जगह भी देखी जो दोज़ख और जन्नत के बीच है और जिसे 'एराफ़' कहा जाता है। यह जगह बड़ी 'बोगस' है। यहां रहनेवाले कोई काम नहीं करते। वे कभी तो दोज़ख की दीवार पर चढ़कर बैठे रहते हैं और कभी भागकर जन्नत की दीवार पर चढ़ जाते हैं। जन्नत से वे खजूरें, शहद और लोटे 'स्मगल' करते हैं और दोज़ख से नान कबाब, चरस वग़ैरा। किसी दिन वहां खूब चहल-पहल होती है, और किसी दिन कर्फ़्यू-आर्डर लग जाता है।

अब्बाजान ! मैंने इस सैर का पूरा लुत्फ़ उठाया। अब मैं खत खत्म करता हूं; क्योंकि मुझे क़ब्र नं० ४२० पी० बी० एल० में अपनी महबूबा तुर्बतआरा से मर्सिये[2] सुनने जाना है। कल रेडियो-मियानी पर यहां आनेवाले लोगों के नामों का ऐलान हुआ था। उनमें मामू इस्मत अल्लाह का नाम भी था। उन्हें यह खुशखबरी सुनाइए और उनके हाथ आती बार एक जोड़ा चाबी के लट्टू का कफ़न, बूटों के तसमे, केवी पालिश, गुलाब के अर्क़ की एक बोतल, ब्लेडों का एक पैकट, गोल्ड-फ़्लैक सिगरेटों का डिब्बा, आध सेर सौंफ़, डेढ़ पाव मुश्क काफ़ूर, दो सेर तांदले का घी, 'कारवां-मार्का' ताश, डेढ़ दर्जन रंगदार लट्टू, 'बरसात' और 'गांव की गोरी' के फ़िल्मी प्लाट, दो तरबूज़ (बड़े), पंद्रह सेर बासमती, पिशावरी हुक्के की चिलमें और एक चूहेदान ज़रूर भेज दीजिए।

बाक़ी अम्मां को सलाम (मैं उन्हें बहुत याद करता हूं।) ! पढ़ने-

---

१. बुज़ुर्गों का धंधा २. मुर्दों के प्रशंसागान

सुननवालों को सलाम! अगर आप इस जुमेरात को मेरी क़ब्र पर फ़ातहा पढ़ने आएं तो सिरहानेकी तरफ़ बाईं जानिबवाले सूराख में एक असली 'तारा-मार्का' बीड़ियों का बंडल ज़रूर डाल दें। यहां हर माल नक़ली मिलता है। जवाब जल्दी दें।

(और हां, मशहूर एक्ट्रेस कामिनी कौशल की एक तस्वीर भी साथ लेते आएं!)

फ़क़त!

आपका बेटा
मुहर्रमअली मरहूम



प्रकाश पण्डित

७ अक्तूबर, १९२४ को जन्म लेनेवाले साहित्यकार प्रकाश पण्डित 'हरफ़नमौला' हैं। आपने कहानियां भी लिखी हैं। हास्य-व्यंग्य और गंभीर लेख भी। स्टेज और रेडियो-ड्रामों की भी रचना की है और बच्चों के साहित्य की भी। कई वर्ष तक उर्दू के प्रसिद्ध पत्रों 'शाहराह', 'प्रीत लड़ी' और 'फ़नकार' का सम्पादन भी किया है और उर्दू तथा हिन्दी की लगभग ७० पुस्तकों पर आपका नाम लेखक, सम्पादक और अनुवादक के रूप में मौजूद है। एक कविता कहने की कमी थी सो 'उर्दू के लोकप्रिय शायर और उनकी शायरी' नामक पुस्तकमाला का सम्पादन कर वे इस ओर से भी कर्तव्यमुक्त हो गए हैं। बल्कि इन पुस्तकों के परिचय लिखकर उन्होंने हिन्दी परिचय-लेखन में नई शैली की नींव रखी है। आपने 'ऑल इण्डिया जर्नलिस्ट एसोसियेशन' और पंजाब सरकार से पुरस्कार भी प्राप्त किए हैं।

प्रकाश पण्डित के इन साहित्यक कारनामों को देखते हुए और उनके नाम के साथ शब्द 'पण्डित' पढ़ते हुए आम तौर पर लोग उन्हें कोई बड़ा-बूढ़ा समझ बैठते हैं, लेकिन अपने होंठों पर सुन्दर मुस्कराहट संभाले हुए छत्तीस-वर्षीय प्रकाश पण्डित से जब मुलाक़ात होती है तो इस अनथक नौजवान के काम और नाम की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। भारत-विभाजन के बाद दस वर्ष दिल्ली में बिताकर प्रकाश पण्डित पिछले दो वर्षों से बम्बई के फ़िल्म-जगत् में चले गए हैं और लिखने की रही-सही कसर फिल्मी कहानियां और संवाद लिखकर पूरी कर रहे हैं।

—प्रकाशक

क्षमा कीजिए

"क्षमा कीजिए, मैंने आपको पहचाना नहीं।"

"क्षमा कीजिए, समय ही ऐसा आन पड़ा है, वरना मैं कभी आपसे क़र्ज़ न मांगता।"

"क्षमा कीजिए मैं इतना मूर्ख नहीं कि आपके झांसे में आ जाऊंगा।"

"क्षमा कीजिए, आप बड़े बदतमीज़ हैं।"

दो शब्दा का यह वाक्य 'क्षमा कीजिए' देखने में केवल छोटा-सा वाक्य है, लेकिन अगर कभी भगवान ने आपको इन शब्दों के बारे में सोचने क फ़ुर्सत या सामर्थ्य दी; तो मेरी तरह आपको भी दो शब्दों का यह वाक्य न केवल दो शब्दों का वाक्य नज़र आएगा, बल्कि दिन को तारे भी नज़र आने लगेंगे।

मुझे यदि दिन को तारे नज़र आते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि मेरी नेत्र-ज्योति आपके मुक़ाबले में तीखी है या हर चीज़ को मैं सूक्ष्मदर्शकयन्त्र से देखने का आदी हूं। मैं कोई अलौकिक जीव भी नहीं कि किसी क्रिया द्वारा दिन को रात में बदलकर चुपके से तारे देख लेता हूं। जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। बात केवल यह है कि भगवान की बजाय भगवान के नेक बंदे आए दिन मुझे सोचने की फ़ुर्सत और सामर्थ्य प्रदान करते रहते हैं।

ऐसा तो कई बार हो चुका है कि मैं रेल के सफ़र में हूं। रात का समय है। अपनी सुविधा के लिए अधिक पैसे खर्च करके मैंने पूरी बर्थ रिज़र्व करवा रखी है और बड़े आराम से लेटा हुआ कोई रोचक पुस्तक पढ़ रहा हूं कि एकाएक मानो भूकम्प आ जाता है और दूसरे ही क्षण में मैं देखता हूं कि मेरी बर्थ पर दर्जन-भर नौनिहाला को गोद में भरे एक महामहिला फुसकड़ा मारे बैठी हैं और उन दर्जन-भर नौनिहालों के

पूजनीय पिता 'क्षमा कीजिए, आपको कष्ट हुआ' कहते हुए मेरी गोद में बैठने की कोशिश कर रहे हैं।

ऐसा भी कई बार हो चुका है कि अपने कमरे के दरवाज़े, खिड़कियां और रोशनदान बंद करके मैं कुछ लिखने में व्यस्त हूं। सुन्दर वाक्य, सुन्दर उपमाएं मानो आकाश से उतर रही हैं और मैं उन्हें काग़ज़ पर उतारते हुए आध्यात्मिक प्रकार की प्रसन्नता का रसपान कर रहा हूं (यह मेरा ही कथन है कि लेखक केवल उसी समय महान होता है, जब वह लिख रहा हो।) कि अचानक दरवाज़ों-खिड़कियों पर झपताल शुरू हो जाता है। दरवाज़ा खोलने पर किसी भी मुखाकृति के एक महानुभाव, जिन्हें सेवक को जीवन में पहली बार देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है, लेकिन जिनका आग्रह होता है कि मैं उन्हें अपना पड़ोसी मानूं, कमरे में प्रवेश करते हैं और 'क्षमा कीजिए' कहकर और मेरी कुर्सी पर बैठकर, काली मिर्च, लौंग और तिली के तेल के फ़ायदों पर इतना लम्बा-चौड़ा व्याख्यान झाड़ने लगते हैं और साथ ही साथ 'क्षमा कीजिए, मैं आपका समय नष्ट कर रहा हूं!', 'क्षमा कीजिए, आप कुछ लिखने में मसरूफ़ थे!' कहते जाते हैं कि जी चाहता है, महानुभाव को उठाकर पूरी शक्ति से बाहर उछाल दूं कि 'भदन्त! मेरी सात पुश्तों ने आपको क्षमा किया! भगवान के लिए आप मुझे क्षमा कर दीजिए!' लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता। मनुष्य जाति ने सैकड़ों-हज़ारों वर्षों के निरन्तर प्रयोगों-प्रयत्नों के बाद सभ्यता नामक एक गुण ही का तो आविष्कार किया है, जिसे अमीर, ग़रीब, बूढ़े, बच्चे अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करने के इच्छुक हैं। सभ्य जातियां तो 'क्षमा कीजिए' कहने पर हत्यारों तक को क्षमा करने के बारे में सोच रही हैं; मैं ऐसा गया-गुज़रा नहीं कि काली मूंछों या सफ़ेद दाढ़ीवाले किसी महानुभाव को क्षमा न कर सकूं; जिनका यह अनुरोध भी हो कि वे मेरे पड़ोसी हैं।

मैंने तो उन महानुभावों को भी कई बार क्षमा किया है जो सचमुच मेरे पड़ोसी हैं और हर चौथे-छठ किसी न किसी वस्तु का मेरे ग़रीबख़ाने से सफ़ाया करते रहते हैं। एक बार एक पड़ोसी पधारे और 'क्षमा कीजिए, थोड़ी देर के लिए मैं आपका साईकल लिए जा रहा हूं,' कहकर मेरी साईकल ले गए। साईकल वे निःसंदेह थोड़ी देर के लिए ले

गए थे क्योंकि थोड़ी देर बाद वापस ग्राकर उन्होंने कहा, "क्षमा कीजिए, ग्रापकी साईकल चोरी हो गई !"

एक बार एक ग्रौर पड़ोसी पधारे ग्रौर पधारने से पहले ही खड़े-खड़े बोले, "क्षमा कीजिए, कल ग्रापकी ग्राज्ञा के बिना ही मैं ग्रापका ग्रामोफ़ोन बाजा ले गया था—ग्रौर क्षमा कीजिए, ग्रापका ग्रामोफ़ोन बाजा ग्राज बच्चों ने तोड़ डाला है !" ग्रौर यह कहकर खड़े-खड़े वापस चले गए।

साईकल ग्रौर ग्रामोफ़ोन बाजा ही नहीं, ग़रीबखाने की हर चीज़ इस 'क्षमा कीजिए' की भेंट हो चुकी है। कभी ग़रीबखाने में सोफ़ासैट थे। क़ालीन, बिजली के पंखे, रेडियो, रेडियोग्राम, दुर्लभ से दुर्लभ पुस्तकों से भरा हुग्रा बहुमूल्य पुस्तकालय—क्या था जो ग़रीबखाने में नहीं था ! लेकिन ग्रब ग्रगर ग्राप ग़रीबखाने में पधारें तो ग्राप देखेंगे—क्षमा कीजिए, सेवक के सिवा ग्रब ग्राप ग़रीबखाने में कुछ भी न देखेंगे !

* * *

अब तक प्रकाशित

८२ हिन्द पॉकेट बुक्स

उपन्यास

आभा	:	आचार्य चतुरसेन
बीते दिन	:	जैनेन्द्रकुमार
बड़ी-बड़ी आंखें	:	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
बर्फ का दर्द	:	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
गद्दार	:	कृश्न चन्दर
एक गधे की आत्मकथा	:	कृश्न चन्दर
देवदास	:	शरत्चन्द्र
पंडितजी	:	शरत्चन्द्र
चरित्रहीन	:	शरत्चन्द्र
बिराजबहू	:	शरत्चन्द्र
आनन्द मठ	:	बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
आरती	:	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय
क्रांतिकारी	:	जयन्त वाचस्पति
मुक्ता	:	सत्यकाम विद्यालंकार
संकल्प	:	हंसराज 'रहबर'
छोटी-सी बात	:	रांगेय राघव
दायरे	:	रांगेय राघव
अंधेरा उजाला	:	ख्वाजा अहमद अब्बास
प्यार की पुकार	:	ख्वाजा अहमद अब्बास
डाक्टर देव	:	अमृता प्रीतम
एक सवाल	:	अमृता प्रीतम
कसक	:	अमृता प्रीतम
कुलटा	:	राजेन्द्र यादव
ज्वारभाटा	:	मन्मथनाथ गुप्त
जाल	:	मन्मथनाथ गुप्त
भूल	:	गुरुदत्त

अधूरा सपना	अनन्त गोपाल शेवड़े
कलाकार का प्रेम	ठा० राजबहादुरसिंह
एक स्वप्न, एक सत्य	यज्ञदत्त
एक लड़की : दो रूप	रजनी पनिकर
छलना	गोर्की
प्यार की ज़िन्दगी	टाल्सटॉय
संघर्ष	चेख़व
एक अनजान औरत का खत	स्टीफेन ज़्विग
प्रेमिका	लिन यूताङ
पहला प्यार	तुर्गनेव
सागर और मनुष्य	अर्नेस्ट हेमिंग्वे
इंसान या शैतान	स्टीवेन्सन
अंधकार	प्रेमेन्द्र मित्र
दो बहनें	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुदाई की शाम	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
बहूरानी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुआरी	दॉस्तॉवस्की
पाखंडी	देवीप्रसाद धवन 'विकल'
रात और प्रभात	भगवतीप्रसाद वाजपेयी
मृगतृष्णा	नानकसिंह
शिकारी	'वनफूल'
कलंक	नैथेनियल हॉथार्न

कहानी

पंचतन्त्र	आचार्य विष्णुशर्मा
काबुलीवाला	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
पतिता	आचार्य चतुरसेन
रहस्य की कहानियां	एडगर ऐलन पो
बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	राधेश्याम पुरोहित
उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	प्रकाश पंडित
संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	बालकृष्ण एम० ए०
घोंसला	किशोर साहू
एक पुरुष : एक नारी	राजेन्द्र यादव : मन्नू भंडारी

काव्य : शायरी

मेघदूत	:	कालिदास
गीतांजलि	:	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत	:	क्षेमचन्द्र 'सुमन'
जिगर की शायरी	:	जिगर
दीवान-ए-ग़ालिब	:	ग़ालिब
उमर ख़ैयाम की रुबाइयां	:	'बच्चन'
गाता जाए बंजारा	:	साहिर लुधियानवी
आज की उर्दू शायरी	:	प्रकाश पंडित

जीवनोपयोगी

सफल कैसे हों	:	स्वेट मार्डेन
जैसा चाहो वैसा बनो	:	स्वेट मार्डेन
प्रभावशाली व्यक्तित्व	:	स्वेट मार्डेन
सफलता के आठ साधन	:	जेम्स ऐलन

विविध

शकुन्तला	:	कालिदास
घूंघट में गोरी जले	:	कृश्न चन्दर
गांधीजी की सूक्तियां	:	ठा० राजबहादुर सिंह
पत्र लिखने की कला	:	प्रो० विराज एम० ए०
बर्थ कंट्रोल	:	डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा
योगासन और स्वास्थ्य	:	डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा
डाक्टर के आने से पहले	:	डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा
ठीक खाओ, स्वस्थ रहो	:	शुकदेवप्रसाद सिंह
आपका शरीर	:	आनन्द कुमार
हस्त-रेखाएं	:	प्रकाश दीक्षित
अमर वाणी	:	'मानसहंस'
बिन बुलाए मेहमान	:	प्रकाश पंडित

प्रत्येक का मूल्य एक रुपया

82-1

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

रिद्वार
5559

थ सहित
चाहिए।
लगेगा।

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

उर्दू के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य-लेखकों—कन्हैयालाल कपूर, शौकत थानवी, कृश्न चन्दर, हाजी लक़लक़, मंटो, फिक्र तौंसवी आदि की चुनी हुई रचनाएं 'बिन बुलाए मेहमान' में पढ़िए। इन रचनाओं में आपको खट्टा, मीठा, चरपरा तीनों रस मिलेंगे। पढ़ते-पढ़ते गुदगुदी भी लगेगी और सूई की चुभन भी देगी।

हिन्द पॉकेट बुक्स

